"तार सप्तक कवियों के काव्य सिद्धान्त और उनकी कविता"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की

डी० फिल०

उपाधि हेतु

शोध प्रबन्ध

(सत्र 2000-2001)

अखिलेश कुमार मिश्र

प्रस्तुतकर्ता

अखिलेश कुमार मिश्र

निर्देशक

श्री दूधनाथ सिंह

भूतपूर्व उपाचार्य, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

'तार सप्तक कवियों के काव्य सिद्धान्त और उनकी कविता'

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास मे तार सप्तक उस बिन्दु पर अवस्थित है जिसके एक ओर छायावाद, प्रगतिवाद और छायावादोत्तर कविताएँ हैं, तो दूसरी ओर उसी की कोख से निकला स्वय प्रयोगवाद है और अन्य पक्ष मे नकेनवाद और नयी कविता। तार सप्तक ही वह विभाजक रेखा है जिसके अभाव मे छायावाद, प्रगतिवाद, छायावादोत्तर कविताओं के बाद की हिन्दी कविता को समझा नहीं जा सकता, तार सप्तक वह धागा है, जो बाद की हिन्दी कविता को पूर्व की हिन्दी कविता की परपरा से जोडता है, तार सप्तक एक जरूरी संकलन इसलिये भी है कि वह भविष्य की हिन्दी कविता को 'रचना' और 'दृष्टि' के स्तर पर प्रभावित करता है। तार सप्तक कवियों के काव्य सिद्धात हिन्दी कविता के काव्य सिद्धांत को दूर तक सचालित करता है।

तार सप्तक का ऐतिहासिक महत्व उसके एकत्र प्रयास में है, उसमें काव्य सबधी अपने प्रयोगो को न केवल मान्यता दिलायी वरन् आगे भी इस तरह के प्रयोगों के लिये मार्ग प्रशस्त किया। पर विडम्बना यह है कि तार सप्तक जैसी महत्वपूर्ण कृति का कोई विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण व्यवस्थिति रूप से सामने नहीं आ सका है। डॉ० कृष्णलाल की पुस्तक 'तार सप्तक' के कवि काव्य शिल्प के मान. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की पुस्तक तार सप्तक कवियों की समाज चेतना, आदि में तार सप्तक के संबध में जो चर्चा मिलती है उसके केन्द्र में तार सप्तक नहीं हैं। ये पुस्तकें तार सप्तक संबधी विवेचन की बहुत सारी स्थितियों और अपेक्षाओ को छोड़ जाती हैं। मेरे इस शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य तार सप्तक कवियों के काव्य सिद्धांत और उनकी कविता की व्यापक छानबीन करना होगा, शोध प्रबन्ध के शीर्षक से यह 'तार सप्तक

कवियो के काव्य सिद्धात' और उनकी कविता' से यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि यहा मात्र तार सप्तक कवियों के काव्य सिद्धात पर ही चर्चा हुयी होगी या यह कि इसमें तार सप्तक के कवियो के सारे काव्य सिद्धातो और उनकी कविताओं का विवेचन विश्लेषण किया गया है। यहा मेरे शोध का अभिप्रेत तार सप्तक मे व्यक्त हुये उनके कवियों के काव्य सिद्धात और मात्र सप्तक मे सकलित उनकी कविताएँ ही हैं। मेरे शोध का अभिप्रेत तार सप्तक कवियों के पहले सस्करण के वक्तव्यो तथा दूसरे सस्करण के पुनश्च मे आये हुये काव्य सिद्धात को उनके भीतर व्यवस्थित काव्य सूत्रों को खोजने और पाने का रहा है। इन काव्य सिद्धांतों को सप्तक मे संकलित कविताओ के विविध पक्षो की जाच–पड़ताल मे लागू करने की कोशिश भी है।

तार सप्तक के बारे मे ऐसी धारणा रही है कि वह हिन्दी कविता की स्वाभााविक परंपरा के बाहर है यह सच नहीं। हम कह सकते हैं कि तार सप्तक में हिन्दी कविता की परपरा व्यवस्थित रूप में मौजूद हैं। तार सप्तक ने हिन्दी कविता के जिन प्रयोगो को स्थापित किया है उसकी शुरूआत १६३६–३८ ई के आस–पास से हो गया था। बहुत सारे कवि छायावाद, प्रगतिवाद की जमीन को तोडकर इस कविता के लिये नयी विचार भूमि का निर्माण कर रहे थे। इस नव निर्माण में छायावादी कवि निराला और पत, छायावादोत्तर कवि नरेन्द्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, नलिन विलोचन शर्मा, केदार नाथ अग्रवाल आदि कविता अपने–अपने तरीके से संभवन बना रहे थे। हिन्दी में बहुत दिनों तक यह आम धारणा बनी रहीं कि तार सप्तक इसके संपादक अज्ञेय द्वारा चलाये गये प्रयोगवादी आंदोलन का एक हिस्सा है और तार सप्तक की भूमिका में आये हुये 'राहो के अन्वेषी' जैसा पद विशुद्ध रूप से अज्ञेय की देन है। इन सारी बातों को ध्यान मे रखते हुये प्रथम अध्याय में तार

सप्तक की आवश्यकता उसका इतिहास, सपादन और विवाद कर विचार प्रस्तुत किया गया है। इसमे ऐतिहासिका स्थिति मे हिन्दी कविता मे तार सप्तक की आवश्यकता, तार सप्तक के प्रकाशन का इतिहास, उसके सपादन की दृष्टि और उसके सपादन और प्रकाशन संबधी विवाद सम्मिलित हैं।

दूसरे अध्याय में तार सप्तक की भूमिका, राहो के अन्वेषी का अर्थ और विश्लेषण, प्रयोगवाद का नामकरण हिन्दी कविता के नये प्रस्थान बिन्दु के रूप मे उसका निरूपण तथा हिन्दी काव्यादोलन के विविध वादो के साथ प्रयोगवाद का सबध दिखाया गया है। इसमे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रपद्यवाद, नयी कविता के साथ प्रयोगवाद के लेन–देन को रेखाकित करने की कोशिश की गयी है।

तीसरे अध्याय तार सप्तक के कवि एव उनकी कविताओं के विविध पक्ष का विस्तृत विश्लेषण अध्ययन किया गया है। इसमे तार सप्तक के सातों कवियों की तार सप्तक की कविताओं के विविध पक्षों की उनके काव्य वैशिष्ट्य के आधार पर समझने की कोशिश की गयी है।

चौथे अध्याय मे तार सप्तक कवियों के काव्य चितन का विस्तृत सर्वेक्षण और सिद्धात निरूपण को समझाने की कोशिश की गयी है। जहां सर्वेक्षण में उनके सिद्धांतो को समझने की कोशिश है वहीं सिद्धांत निरूपण में कवियों के काव्यगत विविध पक्षों पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, इसमें परोक्ष रूप से हिन्दी कविता के चितन में तार सप्तक कवियों का अवदान सन्निहित है।

पांचवे अध्याय मे तार सप्तक कवियों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के वक्तव्यो मे आये हुये परिवर्तनों के कारणो को समझने की कोशिश की गयी है। यहां यह ध्यान मे रखा गया है कि यह परिवर्तन अन्विति है या अन्तर्विरोध या विकास

है।

प्रस्तुत शोध प्रबध मे मेरी यह कोशिश रही है कि प्रचलित तरीको से अलग हटकर 'तार सप्तक' को हिन्दी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे रखकर देखा जाय। 'तार सप्तक' के प्रकाशन और उसके अवदान को लेकर अभी भी बहुत सारे भ्रम बने हुये हैं। यदि मेरे शोध प्रबध से कुछ भ्रम निवारण हो सके तो अपने श्रम को सार्थक समझूँ।

मेरे इस शोध कार्य मे किससे कैसा सहयोग असहयोग मिला उसको यहा बताना या उसकी चर्चा करना भी उचित नहीं समझता। फिर भी जिनके सहयोग के लिये आभारी हू उनमे सबसे पहले अपने शोध गुरु श्री दूधनाथ सिंह का मैं हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होने अपने उचित दिशा निर्देशो द्वारा मुझ मति मन्द से ऐसा गूढ़ कार्य करवा लिया। अपने शोध में मै मार्कण्डेय दादा, नामवर जी, नेमि जी, को हर क्षण अपने साथ उपस्थित पाता रहा। गुरूवर प्रो. सत्य प्रकाश मिश्र ने बार–बार तकाजा न किया होता तो शायद यह कार्य संभाव्य ही बना रह जाता। प्रो. मालती तिवारी जी ने बार–बार शोध कार्य को 'निपटा लेना' उचित होगा की 'चेतावनी' देकर मुझे जगाती रहीं। प्रो बच्चन सिंह का यह कथन ढाढस बधाता रहा कि शोध कार्य बांये हाथ से लिखा जाता है। प्रो. श्री नारायण पाण्डेय, डॉ मत्स्येन्द्र नाथ शुक्ल, डॉ. चन्द्रकला पाण्डेय, डॉ. वीर भारत तलवार, ने हर मुलाकात में मुझसे अधिक मेरे शोध का हाल पूँछकर मुझे अपने तरीको से प्रेरित किया। अपने पहले काव्य संग्रह के प्रकाशक श्री दिनेश चन्द्र ग्रोवर का इस लिये आभारी हूँ कि पता नहीं किस मंतव्य से वे पूछते रहे कि आपका शोध विषय क्या है और कब पूरा होगा।

महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री अशोक

बाजपेयी का आभारी हूँ कि उन्होने एकाधिक बार कहा कि आपके शोध मे क्या रखा है क्यू नहीं लिख लेते। महात्मा गाधी अन्तर्राष्ट्रीय हिदी विश्वविद्यालय की अयोध्या कार्यशाला मे मिले अलीगढ के श्री वार्ष्णेय कालेज के प्रवक्ता डॉ. रमेश कुमार का आभार प्रकट करके मै उनके स्नेह सहयोग को कम नहीं करना चाहता।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के शोध छात्र मित्र उमा कांत चौबे और अतुल तिवारी और विमल प्रकाश वर्मा का समय–समय पर हर तरह की मदद के लिये आभार कदापि नहीं मानूँगा। इलाहाबाद के अपने भूतपूर्व मित्रों श्री अनिल कुमार सिह, श्री सूर्य नारायण सिह, श्री धीरेन्द्र तिवारी और श्री पीयूष श्रीवास्तव का कभी प्राप्त, किसी भी तरह के सहयोग–असहयोग के लिये आभारी हूँ। शुभचिन्तक मित्र श्री सुधीर कुमार सिह का इसलिये आभारी हूँ कि उन्होने शोध कार्य के लिये मेरा रजिस्ट्रेशन कराया और मेरी अनुपस्थिति में पता नहीं कितना शोध शुल्क जमा किया। हिमाचल जाकर खो गये मित्र राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय का इसलिये आभारी हूँ कि उन्होने कभी नहीं पूछा कि मेरे शोध की क्या प्रगति है। मित्र कवि, संपादक, 'अन्वेषी' श्री प्रकाश शुक्ल का निरंतर उत्साहित करने के लिये धन्यवाद देना कम होगा। अपने चाचाजी प्रो विद्याधर मिश्र जी का इसलिये आभारी हूँ कि उन्होंने चेताया कि समय रहते यदि शोध कार्य नहीं पूरा किया तो आगे नहीं कर पाओगे।

मित्र श्री चद्र प्रकाश पाण्डेय, अखिलेश दुबे, प्रणय कृष्ण, देवराज त्रिपाठी, सुनील सिंह, संतोष कुमार चतुर्वेदी, सारग त्रिपाठी, रामजी सेठ, जंग बहादुर सिंह, ओ. पी. सिह, पी. डी. सिंह और त्रिभुवन सिह का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ।

सहोदर संतोष कुमार मिश्र का 'दुनियादारी' की दीक्षा के लिए, अग्रज अशोक कुमार मिश्र का 'हिन्दी' की ओर मोड़ने के लिए, भाई सुनील त्रिवेदी का

अध्ययनशील बनाने के लिए एव डॉ रामनाथ तिवारी का अज्ञेय का एक दुर्लभ अप्रकाशित साक्षात्कार पढाने के लिए आभार मानना चाहूँगा।

साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री विभूति मिश्र का उनके स्नेह के लिए हिन्दुस्तानी एकेडमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय का पुस्तकालय के विविध उपयोग के लिये आभारी हूँ। शासकीय महाविद्यालय, उतई, जिला दुर्ग में हिन्दी के प्रवक्ता डॉ शियाराम शर्मा का उनके द्वारा दिये गये सहयोग के लिये हार्दिक आभारी हूँ। स्वर्गीय रामविलास जी का आभार मैं कैसे प्रकट करू कि उन्होने एक बार के निवेदन पर मुझे 'तार सप्तक' पर लम्बा इंटरव्यू दिया। घर में तरह–तरह से सहयोग करने के लिये आभा को क्या दूँ। इलाहाबाद मे दुर्दिन के साथी रविकांत, अंशुल त्रिपाठी का मै विशेष रूप से आभारी हूँ, ये सब न होते तो मेरा क्या होता। अनुज आनद मिश्र, भाजे कृष्ण कुमार दुबे और इस शोध प्रबध के टकक आनन्द कुमार पाण्डेय का उनके अलग–अलग तरह के सहयोगों के लिये आभारी हूँ।

सबसे अत मे अपने उस 'हिन्दी विभाग' का आभारी हूँ जिसने हिन्दी के प्रति रूचि पैदा करने मे और हिदी का बने रहने मे अपने पुराने इंद्रजाल से मुझे अपने फंदे मे फसाये रखा।

अखिलेश कुमार मिश्र

अध्याय - एक
तार सप्तक की योजना

"सारा साहित्य सातत्य का अविविच्छन्न प्रवाह है, जिसका वर्तमान अतीत को अपने साथ लिये रहता है। अतीत बराबर अपूर्ण होता है और जब नये मुहाविरो मे नयी अनुभूतियाँ लिखी जाने लगती है तब वह केवल वर्तमान के जीवित होने का ही प्रमाण नहीं होता, उससे यह भी प्रत्यक्ष होता है कि अतीत की प्रक्रिया पूर्ण हो रही है। छायावाद का जन्म द्विवेदी युग की अपूर्णताओं मे हुआ था और छायावाद भी अपूर्ण निकला जिसकी पूर्ति का प्रयास छायावादोत्तर काल ने किया। और इस छायावादोत्तर काल की अपूर्णता और अतृप्ति भी युवको को अनुभूत होने लगी है। हम जानते है कि वे इस अपूर्णता को भी पूर्ण करेगे, और फिर पोतो का युग आयेगा जो अपने पिता की अपूर्णताओ को दूर करने की कोशिश करेगा। अपूर्णता और पूर्णता की यह प्रक्रिया, अनिवार्य रूप से कविता की निचाई या ऊँचाई की प्रक्रिया नही है।

ऐतिहासिक सत्य केवल इतना है कि हर युग नया जल लेकर आता है और हर युग जब जाने लगता है, तब उसके लाये हुए जल से आगामी युग की प्यास नहीं बुझ पाती। इसलिए, प्रत्येक युग को अपना कुआ आप खोदना पड़ता है, चाहे वह छिछला ही क्यों न हो।"

— रामधारी सिह दिनकर

'काव्य की भूमिका' पृष्ठ ६२

(क) आवश्यकता

द्विवेदी युग की काव्यानुभूति से असतुष्ट होकर छायावादी कवियो ने भय, भाषा और शिल्प के स्तर पर जिस स्वर्ण काल्य लोक की रचना की थी, साहित्य और राजनीति की ऐतिहासिक आवश्यकता के तनाव मे वह काव्य लोक अप्रासगिक होता जा रहा था। ऐसे समय की काव्यानुभूति को निराला की इन दो पंक्तियो से समझा जा सकता है---

जब कडी मारे पडीं, दिल हिल गया,

पर न कर चूँ भी कभी पाया यहाँ,

छायावादियो मे इस परिवर्तन को हिन्दी साहित्य के अध्येताओ ने सबसे पहले बडे साफ तौर पर पत के काव्य विकास में रेखाकित किया। युगांत में छायावाद का युगात, युगवाणी मे अम्बर से उतार कर गगन बिहारी कवि धरती पर उतरने को आकुल हो जाता है। और ग्राम्या मे वह धरती और ग्राम जीवन के गीत गाने लगता है --

देख रहा हूँ आज् विश्व को

मै ग्रामीण नयन से।

इस ग्रामीण नयन से जब वे जीवन के यथार्थ को देखना शुरू करते हैं तब छायावाद का राशिलोक 'वह बुड्ढा' के गुहा सरीखी आंखों के अंधकार में डूब जाता है। और कविका मन अपने प्रारम्भिक भाव लोक को गैर जरूरी समझने लगता है।

निराला, जिनका छायावादी काव्य लोक जीवन के यथार्थ से बराबर संघर्ष करता रहता था, और छायावाद के दौरान भी वे यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करते रहते थे। वे छायावादी लोक से निकलकर भिक्षुक, विधवा के साथ पत्थर तोडती मजदूरनी के गुरु हथौडे के बारम्बार प्रहार और 'अट्टालिका प्राकार' के वैषम्य

पर की गहरी दृष्टि जमाये हुए थे।

छायावादी काव्यलोक से इस सक्रमण काल की प्रतिनिधि रचना 'कुकुरमुत्ता' है। जिसमे पूरा छायवादी काव्य ससार धराशायी हो जाता है। वहा मिश्रित नया भावबोध सामने आता है जिसमे प्रतीक की प्रमुखता है। कुकुरमुत्ता और गुलाब एक ही साथ दो अलग वर्गो के प्रतीक के रूप मे सामने आते हैं और नये युग के सूत्रपात की सूचना भी देते है। अलग छायावादी काव्यदृष्टि इतिहास के नये पविर्तनो को वाणी देने मे असमर्थ हो चली थी। पत यह घोषणा कर रहे थे कि "छायावाद इसलिये अधिक नहीं रहा कि उसमे पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शो का प्रवाह, नवीन भावना का सौदर्य बोध और नवीन विचारो का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर अलकृत सगीत रह गया था।"[1] कवि भाग –२ किन्तु केवल 'अलकृत सगीत' कहकर छायावाद के ऐतिहासिक महत्व को कम नहीं किया जा सकता। द्विवेदी युग की कविता, जिसकी वस्तु अधिकतर दैनिक जीवन के विषयों से सम्बद्ध भी —— में जीवन की उपयोगिता तो थी किन्तु प्रतिदिन प्रयोग में आने के कारण यह सादगी से युक्त पर आकर्षण से युक्त थी, जीवन की क्षमता की याद दिलाने वाली और दयानद, विवेकानद तिलक आदि के संयमित विचारो से संयुक्त। छायावादी कवियों ने दैनन्दिन जीवन की इस सादगी से ऊबकर नवीन 'मादक सौन्दर्य की खोज की। यह अकारण नहीं है कि ये इस नवीनता की खोज मे जीवन सघर्ष से भागकर सौन्दर्य के कल्पना लोक में पहुँच गये। छायवादी कविता का भावलोक 'कल्पना के कानन की रानी' का भाव लोक है। कविवर पंत जहाँ 'फूलों के हास' का मोल भाव कर रहे थे, छायावाद के इस कल्पना लोक में 'स्वप्न, नक्षत्र, चन्द्रमा, प्रेम, अनंग, लहर, नदी, विहग आदि देवी देवता बन गये हैं। छायावादियो ने जिस रहस्यवाद को अपनाया वह

भी उनकी बौद्धिक जिज्ञासा की प्यास थी। इन जिज्ञासा की विशिष्ट परिणति उनके कव्यात्मक प्रयोगो मे मिलती है। छद विधान और शब्दो के चयन मे छायावादियो ने जिस नवीनता को आत्मसात किया उसमे काव्य भाषा को नया सस्कार मिला। 'छायावाद की सबसे बडी देन यह रही कि उसके यत्र गृह मे एक समय के कर्कश समझी जाने वाली खडी बोली गलकर मोम हो गयी।'[2] छायावाद प्रगति का काव्य है। छायावादी गीतो को हिन्दी काव्य के मर्मज्ञ अलग से पहचान लेगे। छायावादी कवियो ने गीतो की जमीन तोडकर आगे के कवियो के लिए 'उर्वर प्रवेश' तैयार कर दी। गीत की झकृति से पूरा जीवन ही झकृत हो चला।

छायावादी कवि सफल ऐन्द्रजालिक थे। जिस वस्तु का भी इन्होने स्पर्श किया उसे इद्रधनुषी रग मे सराबोर कर दिया। द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय कविताएँ, राष्ट्र की जो चौहद्दी प्रस्तुत करती थीं, छायावादियो की भाव प्रवण अनुभूति मे आकर जीवत और उत्प्रेरक हो उठी।[3] छायावाद पर आलोचकों ने पलायनवादी होने का आरोप लगाकर किया है। छायावाद मे पलायनवाद मात्र इतना ही है कि ये कवि जीवन और समाज की समस्याओ से प्रेमचद की तरह दो चार नहीं हो पाये। बल्कि अपनी कल्पना के साथ भ्रमण करते रहे। छायावादी कवियो को परम्परा के रूप में द्विवेदी युग का जो भावलोक मिला था, उसके खिलाफ उन्हे जाना ही था। द्विवेदी युग की वर्जनाओं को तोडकर ही वे नवीन भाव रच सकते थे। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जो भावलोक वे रच रहे थे उनके चित्रण की शक्ति उनमें थी कि नहीं। छायावादियों की असल कमजोरी भावना और अनुभूति के अभिव्यक्ति की असफलता है। यह सच है कि भावों की उच्चता से ही महान काव्य की रचना सम्भव हो पाती है, किन्तु भावों की उच्चता के बिना भी महान काव्य की सृष्टि सम्भव है। कविता का लोक,उपदेश और ज्ञान का

लोक नहीं बल्कि सौदर्य का लोक है। कविता अगर कला का पर्याय है तो भाव से ज्यादा काव्य शिक्षा की कसौटी पर कसा जाना चाहिये।

छायावाद के क्रोड से जो छायावादोत्तर कविता निकली उसके प्रमुख कवि दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, गोपाल सिह नेपाली, रामेश्वर शुक्ल अनन्त, केदारनाथ मिश्र, प्रभात, सोहनलाल द्विवेदी, सुधेन्द्र, हरीकृष्ण प्रेमी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिद, हस कुमार तिवारी, जानकी वल्लभ शास्त्री, श्याम नारायण पाण्डे, रामगोपाल शर्मा इन्दु, आर सी प्रसाद सिह, कालेक्ससिह केसरी, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, आदि है। इन कवियो ने अपनी काव्यानुभूति का विस्तार करके पाठको की सहानुभूति प्राप्त की। इनकी मुख्य काव्य वस्तु प्रेम, विरह प्रकृति और समाज और राष्ट्र ही थी। इन कवियो ने 'बोल चाल' की भाषा में ही सीधी सच्ची अनुभूतियो का ही चित्रण किया। इनकी भाषा सजीवता और अनुभूति की सच्चाई के साथ–साथ 'प्रसाद गुण' से युक्त थी। ये कवि ऐसी काव्य रचना मे सफल हुए जिसे हिन्दी के पाठको ने हाथो हाथ लिया। छायवादी कविता इन गुणों से मुक्त थी। अत. उनका पाठक वर्ग की सीमित था। छायावाद ने भाषा को अत्यत कोमल बनाया था। सिद्धान्त कौमुदी पढ़कर काव्य लिखने की प्रेरणा आचार्य द्विवेदी देते थे। छायावादी कवि यदि उनकी सीख मान लेते तो 'ज्योतित' जैसा शब्द नहीं बनता, नहीं उन्मन से प्रसन्नता बोधक ध्वनि निकलती और न ही प्रभात, स्त्री रूप धरकर सामने आता। पर छायावादियों ने कविता को कोमलता के सूत्र में पिरोकर अत्यंत मानवीय बना दिया था। एक और छायावादोत्तर कवियों को कोमल वायवीय भाषा का यह उतुंग शिखर मिला था तो दूसरी और द्विवेदी युगीन खाई मिली थी। इन दोनों के बीच संतुलन बनाते हुए छायावादोत्तर कवियों ने अपनी भाषा का परिष्कार और सरस्कार किया था। इन

कवियो के सामने भावाभिव्यक्ति के दो पथ थे -- द्विवेदी युग और छायावादी युग, मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी का पथ तथा पत, प्रसाद आदि का पथ। इनका भाव लोक इन्हे छायावाद की तरफ आकृष्ट करता था तो तीसरा पक्ष गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी की ओर। ये कवि पत के स्वप्न लोक को गुप्त जी और रामनरेश त्रिपाठी की सहज भाषा मे अर्थ व्यक्त करना चाहते थे मुश्किल यह था कि दोनो के मेल मे छायावाद का स्वप्न लोक खण्डित होता था तो गुप्त जी और त्रिपाठी जी के पथ पर कुहासा छा जाता था। छायावादोत्तर कवियो ने इन दोनो के बीच से अपनी कविता की राह बनाई। छायावादी कवियो ने काव्य लोक जिन उपादानो से की थी उनमे स्वप्न हिमकण, क्षितिज, नीलिमा, नक्षत्र जैसे प्रकृति सबधी शब्द प्रमुखता पाते थे, इसके विपरीत जीवन की प्रसन्नता और सघर्ष की कठोरता के शब्द छायावादोत्तर कवियो के प्रयासो की देन है। जीवन की अनुभूतियॉ यहॉ छायावादियो से बदल गयी है। छायावादियो ने द्विवेदी युगीन परम्परा का प्रत्यख्यान किया था जबकि इन कवियो ने उदारता पूर्वक उनका दाय स्वीकार करते हुए उनकी भाषा को माज सवार कर दैनिक जीवन की भाषा बना लिया था। इन दोनो काव्य धाराओं की तुलना करते हुए दिनकर जी ने "छायावादी युग की तुलना उस मनुष्य से की जा सकती है जो साज सिगार, स्वच्छता–सुरम्यता और कोमलता की रक्षा के लिए अपने ड्राइग कक्ष से बाहर कम निकलता है, और छायावादोत्तर काव्य की उस व्यक्ति से स्वच्छता सुरम्यता और कोमलता के उतने ही अश से संतुष्ट था, जो सडकों पर घूमने के बाद भी शेष रह सकता है। छायावाद युग के कवि यदि कक्ष से बाहर निकलते भी थे तो सुबह और शाम को, जब हवा में गर्मी कम हो जाती है। किन्तु छायावादोत्तर काल के कवि धूप मे भी घूमते थे। यह भी हुआ, कि जब छायावाद युग अपने परिपक्व

अथवा समाप्ति पर आया, छायावाद के वे ही कवि जो धूप मे निकलने से परहेज करते थे, खेतो, खलिहानो और कारखानो के आस–पास घूमने लगे। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि छायावादोत्तर काल कोई सर्वथा नवीन क्षितिज लेकर नहीं आया था। वह छायावादी प्रयोगो के परिपाक से उत्पन्न हुआ।[8] यहॉ दिनकर आशिक रूप से ही सही है। क्योकि निराला छायावाद के आरम्भ से ही दिवा के तमतमाते रूप को देख रहे थे। यहॉ कुछ पक्तियो को देख लेना होगा ––

चढ रही थी धूप,

गर्मियो के दिन

दिवाका तमतमाता रूप,

उठी झुलसाती हुई लू ,

रूई ज्यो जलती हुई भू,

गर्द चिनगी छा गयी,

प्राय हुई दोपहर

–– वह तोडती पत्थर'

छायावाद के साथ ही हिन्दी कविता मे एक नये यथार्थ का जन्म हो रहा था। जिसे छायावादी कल्पनाशीलता मजूर नहीं थी। यह यथार्थ भारतेन्दु युग से ही अपनी अभिव्यक्ति के अवसर तलाशता कभी मौन तो कभी मुखर होता चला आ रहा था। छायावाद मे वह निराला के यहॉ मुखरित हो रहा था। ऐसे ही समय में सन् १६३६ मे प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुई। काग्रेस की राजनीति में किसान सभा अस्तित्व में आयी। सारांश यह कि जीवन के नये यथार्थ की अभिव्यक्ति के सारे सामान एकत्र हो चुके थे। अप्रैल १६३६ मे प्रगति शील लेखक सघ के स्थापना

अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए साहित्यकारो का आवाहन करते हुए कहा — "वह (साहित्यकार) देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई की नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई सचाई है।"[५]

प्रगनिशील लेखक सघ के इस अधिवेशन के बाद छायावादी पत इस आदोलन के प्रमुख कवि के रूप में सामने आये। अपनी कविताओ के इस काव्यादोलन के आदर्शों के अनुरूप उन्होने ढाला और गाया था। १९३८ मे रूपाभ नामक पत्रिका निकालकर इसके प्रचार–प्रसार के लिए नयी योजनाएँ प्रस्तुत कीं। इस काव्यांदोलन मे पुराने खेमे के छायावादी तो सम्मिलित हुए ही, छायावादोत्तर काल के सुमन अचल, नरेन्द्र शर्मा जैसे अपेक्षाकृत नये कवियो ने और आगे बढाया। प्रेमचद ने प्रगतिशील लेखक सघ के पहले अधिवेशन के अध्यक्षीय वक्तव्य मे साहित्यकार को राजनीति के आगे चलने वाले मशाल की सज्ञा दी थी, किन्तु विडम्बना यह हुई कि इस आदोलन ने राजनीति ही प्रमुख हो गयी और मार्क्सवादी सिद्धातो के अनुसार साहित्य रचा जाने लगा। साहित्य सिद्धात पहले से बनकर तैयार थे उनका विनियोग साहित्य मे होने लगा। नयी नयी काव्य रूढियॉ विकसित हुई। प्रगतिशील आंदोलन के प्रारम्भ से ही इसके विरोधी आलोचक दूसरी सीमाओ को दिखलाने लगे। प्रगतिशील तथा प्रगतिवादी साहित्य के मूल्याकन के प्रतिमान के रूप में मार्क्सवादी दर्शन को जिस रूप मे लागू किया जाना चाहिए था वैसा हो नहीं पाया। प्रगतिवाद के प्रारम्भ के सिलसिले मे जो बातें कही गयीं उनको लेकर प्रगति समर्थक और विरोधियो के दो खेमे बन गये। डॉ० नगेन्द्र ने प्रगतिवाद पर विचार करते हुए लिखा 'प्रगतिवाद छायावाद की भस्म से नहीं पैदा हुआ, वह उनमे यौवन का गला घोटकर ही उठ खडा हुआ।"[५] तो शभुनाथ सिह ने आक्षेप लगाया, 'छायावाद के भीतर से

विकसित होने पर भी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का दृष्टिकोण छायावाद के प्रति प्रतिक्रिया प्रधान था।' ये सभी आलोचक हिन्दी साहित्य के स्वाभाविक विकास को सही रूप मे नही देख पा रहे थे। प्रगतिवाद का विकास जिस यथार्थवाद को लेकर हुआ, हिन्दी साहित्य मे उसकी अभिव्यक्ति प्रेमचद अपने लेखन मे प्रारम्भ से ही करते आ रहे थे। शोषित मजदूरो के प्रति सहानुभूति शोषण और अत्याचार का विरोध, वर्ग शत्रुओ के प्रति घृणा, वर्गविहीन समाज की स्थापना, जीवन के प्रति एक स्वस्थ आशावादी दृष्टि, पतनोन्मुख और सामंती पूजीवादी मूल्यो का विरोध जैसे कई मुद्दे थे। जिनके साहित्य प्रभावित होता चला आ रहा था। किन्तु इस प्रगति के प्रवाह में 'भारत दुर्दशा' से शुरू हुई जनोन्मुखता और 'स्वदेशीपन' बह बिला गया था, और अन्तर्राष्ट्रीयता की उत्ताल तरगे उठने लगी थीं। कविता अपनी स्थानीयता से विमुख हो चली थी। 'जन मानस का मगल' नारा मात्र होकर रह गया था। रूसी समाजवाद का सकीर्तन करते हुए उस दौर मे बहुसख्यक कविताये लिखी जाने लगीं। जिनमे से कुछ उदाहरण निम्नवत् है--

जब लौ 'श्रम' अरु उपज को, होत न साम्य विभाग

बुझै, बुझाए किमि कहौ, यह अशाति की आगि!

ह्वै न भयो, ह्वैहै नहीं साम्यवाद सम आन

जग की व्याधि अगाध को, साचौ 'नहीं' निदान।

देखि किसानन के दुखहि करत न कोई कृत्य।

स्वान सम्हारन हेतु पै, राखहि गोरे भृत्य।"

(-- करूण सतसई)

पतजी ने लिखा–

साम्यवाद ने दिया जगत् को

सामूहिक जन तत्र महान,

भव जीवन के दैन्य – दुःख से

किया मनुजता का परित्राण,

x x x x x x

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता

निश्चय हमको गॉधीवाद,

सामूहिक जीवन विकास की

साम्य योजना है अविवाद।[४]

रागेयराघव लिखते है—

इतिहास न भूलेगा लेकिन

अपमानो की यह घोर व्यथा

है लिखी रक्त से भारत ने

बत्लियो की मुक्ति ज्वलत कथा

x x x x x x

जब सिह पडे कारागृह मे

जनता पर होते थे प्रहार

कुत्ते बाहर दुम हिला–हिला

थे चूस रहे हड्डी विकार।[५]

इसी दौर मे अचल ने लिखा था —

वह नश्ल जिसे कहते मानव

कीडो से आज गयी बीती

बुझ जाती तो आश्चर्य न था

हैरत है पर कैसे जीती।

x x x x x x

मै कहता हूँ वर्ग चेतना

युग की प्रबल चुनौती है।

युग युग के विकास की

विश्वासो की सभी मनौती है।

छायावाद यदि अति कल्पनाशील और भी मानवीय था तो प्रगतिवाद मार्क्सर्ववाद का सेद्धान्तिक निचोड मात्र। कविता का अतर्वस्तु रूढ और रूग्ण हो चला था। सन् १९४० तक प्रगतिशील कविता अपने शैशव काल से उठ रही थी किन्तु इसमे जिस तरह की अन्तर्वस्तु और शिल्प का प्रयोग चल रहा था उससे इस काल की अधिकतर कविताएँ, उच्च भावो से शून्य निरस शुष्क और, भारतीय राजनीति के प्रतिकूल थीं। आदोलन इतना वेगवान था कि कम समय मे ही न केवल हिन्दी साहित्य मे बल्कि पूरे भारतीय साहित्य मे छा गया था। किन्तु हिन्दी मे जो नयी काव्य पीढिया बन रही थी उनसे काव्य विकास बिल्कुल निरुद्ध हो गया था। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के काव्यात्मकता के चलते कविता का समूचा परिदृश्य 'वर्गवाद, शोषण उत्पीड़न क्राति, लाल सेना, परम्परा से विद्रूप विरोध, जैसे विषय वस्तु में सिमट कर रह गया था। इन उत्साही कवियों के द्वारा हुए पिष्टपोषण के कारण कविता रूढ और रुग्ण हो चली थी। यहाँ व्यक्तिगत अनुभूतियों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। कवि

साम्यवाद के प्रचारक मात्र होकर रह गये थे। कवि का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रह गया था। कविता के मूल्याकन के लिए आचार्य शुक्ल की कसौटी ''कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओ और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके।' [16] बेमानी हो चला था। ऐसे समय मे नयी भावानुभूति से गो तु रा च सम्पन्न कवि अपनी भावनाओ को इस प्रगतिवादी भाषा शैली मे व्यक्त करने मे कठिनाई महसूस कर रहे थे। काव्यनुभूति की विकलता और अभिव्यक्ति के नये रास्ते के तलाश मे अपेक्षाकृत युवा कवियो ने इस प्रगतिवादी शेर से बचते हुए एक नये धरातल की ओर अपने को उन्मुख किया। छायावादी कविता यदि भावना की कविता थी, प्रगतिवादी कविता विचार की कविता थी तो ये नये कवि टी एस इलियट आदि पश्चिमी विचारकों की बौद्धिकता के पक्षधर थे। इन कवियों का प्रयास भावना और विचार की जगह सजग बौद्धिकता को स्थापित करना था। वस्तु और शिल्प सबधी यही असतोष उन्हे 'तारसप्तक' के मच पर लाखडा करता है जहॉ से पगतिवाद की इस किताबी कविता के खिलाफ बौद्धिक आत्मानुभूत प्रधान नयी कविता की राहे खुलती है।

(ख) इतिहास

स ही वा अज्ञय ने 'तार सप्तक' की भूमिका 'विवृत्ति और पुरावृत्ति' मे लिखा है कि – 'दो वर्ष हुए जब दिल्ली मे 'अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन की आयोजना की गयी थी। उस उस समय कुछ उत्साही बधुओ ने विचार किया कि छोटे–छोटे फुटकर सग्रह छापने की बजाय एक सयुक्त सग्रह छापा जाय, क्योकि छोटे–छोटे सग्रहो की पहले तो छपाई एक समस्या होती है, फिर छपकर भी वे सागर में एक बूंद से खो जाते है। इन पक्तियो का लेखक 'योजना विश्वासी' के नाम से पहले ही बदनाम था, अत एक नयी योजना तत्काल उसके पास पहँची और उसने अपन नाम (बदनाम होगे तो क्या नाम न होगा!) के अनुसार तस्वीर कर लिया है।"[११] इस योजना के बारे मे आकाशवाणी को दिये गये अपने एक साक्षात्कार में अज्ञेय कहते हैं 'तार सप्तक की योजना बुनियादी तौर पर मेरी नहीं थी। लेकिन जो उसका रूप बना वह बिल्कुल मेरा था।'"[१२] अज्ञेय यह स्वीकार करते है कि योजना दूसरे लोगो की थी किन्तु तार सप्तक का जो स्वरूप बना उसमे उनकी भूमिका बडी थी। इसकी योजना के इतिहास को बताते हुए वे कहते हैं, 'जब मैं आगरे मे रहता था जेल से छूटने के तुरत बाद की बात है, सैनिक जमाने के और जब प्रभाकर माचवे, नेमिचंद्र बगैरह से परिचय हुआ था तब प्रभाकर माचवे ने यह बात उठाई थी किन्तु कुछ लोगों को मिलाकर एक सग्रह निकालना चाहिए, क्योकि उनके अलग–अलग सग्रह नहीं निकाल सकते और उसमे कहीं यह थी कि निहित था, उनके मन में कि शायद इतनी सामग्री भी नहीं होगी कि अलग अलग संग्रह उनके निकले।' यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि तार सप्तक प्रथम संस्करण की भूमिका में संयुक्त संग्रह छापने की बात अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन के हवाले से करते हैं और 'अपने बारे में' उस

योजना की चर्चा नहीं करते। अज्ञेय उन कवियो की बेबशी को रेखाकित करते है कि उनका प्रकाशन अलग से सभव नहीं है। इसलिये अलग अलग सग्रह की बजाय उनका एक ही सयुक्त सग्रह निकले। उन कवियो ने अज्ञेय को अपने कवि मित्रो के नाम भी सुझाये थे, ये कवि मित्र लगभग समान वय के थे और उनकी शिक्षा दीक्षा भी एक ही इलाके मे हुई थी, उन नामो ने अज्ञेय ने नेमिचद्र, प्रभागचंद्र और मुक्तिबोध का नाम लिया, जो एक ही प्रदेश के थे, और आपस में मित्र थे, किन्तु उनकी चीज छप नहीं पा रही थी।' अज्ञेय कहते है कि ये लोग सग्रह छापने की बात इसलिए कर रहे थे कि उनको ऐसा विश्वास था कि मै इसके लिए कुछ कर सकता हूँ। अज्ञेय के अनुसार यह विचार लेकर उनके पास प्रभाकर माचवे आये थे।[13] अज्ञेय के अनुसार यहीं वो परिस्थिति थी जिसने उन्हे तार सप्तक के प्रकाशन के लिए आगे किया। इस सिलसिले मे अज्ञेय ने माचवे के प्रस्ताव मे कुछ फेर बदल अपनी दृष्टि से किये। अज्ञेय ने कहा कि 'यह तो आप मेरे बिना भी कर सकते हैं, (संग्रह छापने का काम), मै यह सोचता हूँ, कविता मे कुछ नयी बाते हो रही है उनको सामने लाना चाहिये, और वे फिर चाहे जहाँ सभा हो रही हो। यह स्पष्ट है कि वह एक सप्तक या एक मण्डल तक सीमित नहीं रह जायेगी। शायद एक प्रदेश तक भी सिमित नहीं रहेंगी। उनको सामने लाना चाहिए और इसी दृष्टि से सामने लाना चाहिए कि कविता मे एक बुनियादी परिवर्तन हो रहा है।[14] अज्ञेय इस काम को एक चुनौती की तरह लेते हैं। जिसमें उनकी 'दृष्टि' और 'अभिरुचि' काम कर रही थी। उनकी दृष्टि और अभिरुचि कविता में हो रहे बुनियादी परिवर्तन को रेखांकित करने की थी, इसीलिए वे इस कार्य मे रुचि लेते हैं। अज्ञेय की मूल दृष्टि कवि मित्रे के संग्रह निकालने तक में नहीं थी बल्कि 'नये ढंग' की कविता लिखने के कारण इन कवियों की अगुआई

वे करना चाहते थे। इस काम को अज्ञेय स्वीकार करते हैं और सभी लोगों से रचनाये मगवाते है। माचवे जी द्वारा सुझाए गऐ नामों मे से प्रभाग चद शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन का नाम अज्ञेय जी ने छोड दिया। इस योजना मे अपनी ओर से उन्होने राम विलास शर्मा को सम्मिलित किया। रामविलास शर्मा को सम्मिलित करने के अज्ञेय के अपने तर्क है। अज्ञेय का मानना है कि राम विलास शर्मा जी को इस योजना में शामिल करने का कारण उनकी कविताऍ और उनमे विचार भी (है)। अज्ञेय की यह सोच भी कि 'उस' समय अगर मैं चाहता तो रामचद शुक्ल को और राम विलास शर्मा के साथ रख सकता था। लेकिन यह भी कह सकता था कि रामचंद शुक्ल की परम्परा मे कविता लिख रहे है, इसके बावजूद कि उनका राजनीतिक चिन्तन अलग किस्म का था। यह भी बात लोगो को कुछ अद्‌भुत लग सकती है कि मै इस सदर्भ मे रामचन्द्र शुक्ल का नाम ले रहा हूँ कवि सदर्भ में।[१५] इस पूरे प्रसग मे अज्ञेय किसी जनतात्रिक अग्रज की तरह से नहीं बल्कि एक 'डिक्टेटर' के रूप में प्रस्तुत होते है। यह अनुभव करना अनुचित न होगा कि इन्होने प्रस्तावित कवियों के फेर–फार मे भी मनमानी भी होगी और जैसी इन कवियो की मजबूरी थी, अज्ञेय ने मनमानी की ही होगी।

अज्ञेय के सामने जिन छ. कवियों का प्रस्ताव आया था उनमें अज्ञेय ने प्रभाग चद शर्मा, वीरेन्द्र कुमार जैन का नाम निकाल दिया।[१६] इन दोनों के स्थानापन्न के रूप में ही इन्होने रामविलास शर्मा और भारत भूषण अग्रवाल को सम्मिलित किया। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि रामविलास शर्मा अज्ञेय की पसंद थे जबकि भारत भूषण अग्रवाल का नाम नेमिचद्र जैन वगैरह ने सुझाया था। अब तक तारसप्तक के सदर्भ मे हमने अज्ञेय का पक्ष प्रस्तुत किया। इस 'संकेतन' को लेकर

मूल योजना बनाने वाले और संकलन मे सम्मिलित कवियो तथा कुछ आलोचकों का भी अपना पक्ष है। यहाँ उनके पक्ष को भी देखना अनिवार्य है क्योंकि इससे तारसप्तक के सदर्भ मे कुछ नयी बाते प्रकाश मे आती हैं।

तार सत्पक की मूल योजना को लेकर कुछ विवाद रहा है। डॉ. नगेन्द्र ने शेर जग गर्ग को अपने एक साक्षात्कार मे यह दावा किया कि, जब तार सप्तक की योजना बनायी जा रही थी उन्होने बताया कि वे निकट सम्पर्क में था।. . प्रगति और प्रयोग का भेद स्पष्ट नहीं हुआ था और तार सप्तक मे सगृहीत विभिन्न कवि या तो प्रगतिवादी शिविर मे थे ही या उसके आस पास चक्कर लगाया करते थे, या उस नवचेतना के प्रति आकृष्ट थे और अज्ञेय का प्रगति के विषय मे मोह भग तब तक नहीं हुआ था। मुझ स्मरण है कि तार सप्तक की योजना ऐसी ही परिस्थितियो मे बनाई गयी थी। वात्स्यायन जी को योजनो बनाने का शौक है। . . . कथा साहित्य के क्षेत्र मे अपने जीवन्त अनुभवो और प्रप्तिक गुणो के कारण नये क्षिति का अनुसधान करने मे सफल हो जाते है। परन्तु आत्मा के सगीत के अभाव मे कविता मे उनके प्रयोग कारक नही हो रहे थे, मुझे लगता है कि तार सप्तक की योजना कदाचित् इसी मानसिक सघर्ष का परिणाम थी। और यह योजना निश्चय ही उनकी अपनी थी जिन्हे केवल प्रकाशन के लिए उत्तरदायी मानना सही नहीं है।"[13] डॉ. नगेन्द्र अपने इस दावे मे यह मानते है कि तार सप्तक की योजना अज्ञेय की थी और उनमें मानसिक संघर्षो का परिणाम थी। डॉ. श्याम परमार ने भी अज्ञेय को ही इस योजना का श्रेय देते हुए लिखा 'यह योजना अज्ञेय की पूरी सोची समझी हुई थी।'[14]

योजना संबधी इन दावों का खण्डन सप्तक में संग्रहीत कवियों ने स्वयं किया। नेमिचद्र जैन, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल के अतिरिक्त शमशेर

बहादुर सिह ने भी इसका प्रतिवाद किया। नेमिचद जैन 'तारसप्तक प्रसग' मे इन दावो का स्पष्ट रूप से खण्डन किया है। तार सप्तक की भूमिका मे स्वयं अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि यह योजना कुछ उत्साही बधुओ की थी। ये उत्साही बंधु थे प्रभाकर माचवे एव नेमिचद्र जैन। नेमिचद्र जैन के अनुसार अज्ञेय की भूमिका मे जिस अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का उल्लेख है वह गई १९४२ मे हुआ था, प्रभाकर माचवे और मै उसमे सम्मिलित होने के लिए मध्य भारत से आये थे। (उन दिनों मै मध्य भारत के सुजालपुर नामक एक छोटे से कस्बे के एक स्कूल मे अध्यापक था। और तभी वात्स्यायन जी से इस योजना का जिक्र हुआ था।) भारत भूषण अग्रवाल के अनुसार तार सप्तक की योजना का विचार मध्य भारत स्थित चार कवि मित्रों को सूझा था, वे चार कविमित्र थे नेमिचद्र जैन, प्रभाकर माचवे, प्रभाग चंद्र शर्मा एव मुक्तिबोध।" प्रभाकर माचवे के अनुसार खुद उन्होने सुजालपुर मे इस योजना की चर्चा नेमिचद्र जैन एव मुक्तिबोध से की थी।" शमशेरबहादुर सिंह ने मुक्तिबोध के सग्रह 'चाद का मुह टेढा है' की भूमिका मे बताया है कि 'तार सप्ताक की मूल योजना प्रभाकर माचवे और नेमिचन्द्र जैन की थी'। तार सप्तक के सपादक अज्ञेय और उसमें सम्मिलित कवियो के उपर्युक्त उद्धरणो से डॉ नगेन्द्र और डॉ श्याम परमार के तार सप्तक की योजना सबधी इस दावे का खण्डन हो जाता है कि यह योजना मूलत. अज्ञेय की थी। तार सप्तक के प्रकाशित हो जाने तक अनेक तरह की समस्याएँ आती रही है। जिनमे पहली महत्वपूर्ण समस्या कवियों के चयन की, दूसरी तार सप्तक के नामकरण की है। चयन और नामकरण के अलावे भी कुछ प्रकाशन कागज, और डिजाइन सबंधी दिक्कते थीं।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट हुआ है कि तार सप्तक की मूल योजना चार कवियों

की थी और इस तथ्य को नेमिचद्र जैन ने स्वीकर भी किया है। उनके साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभागचद्र शर्मा, नेमिचद्र जेन के अतिरिक्त मध्य भारत या मालवा के कुछ और कवि हो जैसे विरेन्द्र कुमार जैन और गिरिजा कुमार माथुर। तमाम बात चीत के बाद 'सप्तक' नाम सामने आया। इस बात को प्रभाकर माचवे भी मानते हैं कि सगीत प्रेमी होने के नाते 'सप्तक' नाम नमिचद्र ने सुझाया, किन्तु 'तार' शब्द उन्होने (माचवे ने जोडा था। माचवे कहते है कि इसक अलावा एक अन्य नाम भी उन्होंने सुझाया था, 'सप्तर्षि' किन्तु तार सप्तक नाम ही स्वीकृत हुआ। शमशेर बहादुर सिह ने मुक्तिबोध के काव्य सग्रह 'चाद का मुह टेढा है' की भूमिका म 'तार सप्तक' नाम देने का श्रेय प्रभाकर माचवे को देते है जबकि नेमिचद जैन इस बात पर जोर देते है कि 'सप्तक' और 'तार' शब्द दोनो उन्ही के सुझाये तथा अज्ञेय जी द्वारा स्वीकृत किय गये। पहले उन्होने सप्तक नाम सुझाया था फिर उसमे तार जोडकर 'तार सप्तक' बनाया गया। तब समस्या उठ खडी हुई कि सातवा नाम किसका हो। विचार विमर्श के बाद भारत भूषण अग्रवाल का नाम सामन आया लकिन दिक्कत यह थी कि लोग उनसे परिचित नहीं थे, दूसरे वे मालवा के बाहर के थे, और कलकता मे थे। इसलिये उनके नाम पर तत्काल कोई निर्णय नही लिया जा सका। सातवे सहयोगी की तलाश जारी थी। १९४२ वाले उपयुक्त लेखक सम्मेलन के अवसर पर भी उस पर विचार विमर्श चलता रहा और कई नाम सामने आये सयोग से अज्ञेय का नाम सामने आया। यह नाम लोगों को बडा प्रीतिकर और आकर्षक लगा। इन कवियो की व्यावहारिक बुद्धि ने प्रकाशन संबंधी अन्य मामलो मे उनके सहायक बनने की बात सोचकर बडे उत्साह से आगे नाम को स्वीकर किया। अत सातवा नाम उनका ही तय पाया।''

इस बीच 'सकलन' आने मे हुई देरी के कारण १६४७ के अत तक प्रभागचद्र शर्मा इस योजना से उदासीन हो गये और वात्स्यायन जी ने उसके स्थान पर डॉ रामविलास शर्मा को रख लिया। एक और कवि वीरेन्द्र कुमार जैन ने तार सप्तक के लिए अपनी कविताएँ भेजी तो जरूर किन्तु 'अत्यधिक रोमैटिक और रहस्यवादी होने के कारणऔर कविताओ के कहीं गुम जाने के कारण वे इस योजना से निकाल दिये गये और उनकी जगह भारत भूषण अग्रवाल को सम्मिलित कर लिया गया। वीरेन्द्र कुमार जैन के वक्तव्य और रचनाओ के खो जाने के बाद भी न तो उन्हे कोई सूचना दी गयी और न ही उनसे वक्तव्य और रचनाएँ मागी गयी। वीरेन्द्र कुमार जैन को ऐसा लगता है कि भीतर ही भीतर कोई षडयत्र हुआ और उनकी जगह शायद डॉ. राम विलास शर्मा को ले लिया गया।'[२२] अज्ञेय के इस कथन का खण्डन नेमिचद्र जैन तारसप्तक प्रसग लेख मे आता है। जब वे प्रभाग चंद्र शर्मा की उदासीनता के बाद गिरिजा कुमार माथुर के सुझाव पर राम विलास शर्मा के नाम का प्रस्ताव करते हैं। कुल मिलाकर तार सप्तक के कवियो के चयन का श्रेय इस योजना के प्रारम्भिक योजनाकारों को जाता है। वीरेन्द्र कुमार जैन के हटने के पीछे निश्चय ही अज्ञेय की नयी कविदृष्टि थी, जिस पर वीरेन्द्र जी की कविताए खरी नहीं उतर रही थीं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है सप्तक के सदर्भ मे भवानी प्रसाद मिश्र और शमशेर बहादुर सिंह के नामो की चर्चा भी हुई थी, किन्तु सख्या तय हो जाने तथा समय पर कविताएँ नहीं मिल पाने के कारण ये दोनो आगे के लिए छोड दिये गये।[२४] नेमिचंद्र जैन को लिखे अपने २५.६.४२ के पत्र में अज्ञेय ने भवानी, प्रसाद मिश्र नाम के किसी कवि के बारे मे जानकारी चाही है। जो मध्य भारतीय भी हैं और जिनकी कविताएँ उन्हें अच्छी भी लगी थीं।[२५]

(ग) सम्पादन

तार सप्तक की योजना मे प्रकाश के विविध पक्षो को लेकर अनेक तरह के विचार सामने आये, जो तत्कालीन सदर्भ मे नये और मौलिक थे। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार सग्रह की एक रूप रेखा इस योजना मे अज्ञेय के जुडने के पहले बनाई गई थी। जिसमे 'मुखपृष्ठ' पर कवियो के नामो के साथ उनमे फोटो या रेखाचित्रो की एक 'पैनल' छापने की योजना बनी। नाम 'सप्तक' के पीछे नेमिचद्र जैन का सगीत प्रेम था। ये सारी योजना लेकर नेमिचद्र जैन अज्ञेय के पास दिल्ली पहुंचे। दिल्ली पहुचकर प्रभाकर माचवे और अज्ञेय के साथ विस्तार से बातचीत हुई, जिसमें संग्रह के नाम पर फिर से विचार हुआ और पुन. नेमिजी ने 'सप्तक' नाम मे संशोधन करते हुए तार शब्द जोडकर 'तारसप्तक' नाम सुझाया। अज्ञेय जी को यह नाम पसंद आया और अतिम रूप से मान भी लिया गया। सप्तक की मूल योजना मे ऐसे कवियों को रखने की बात की जिनके सग्रह अब तक प्रकाशित नहीं हुआ था। पर सातवे कवि के रूप मे जब अज्ञेय को सम्मिलित करने की बात हुई तब यहीं से सप्तक की मूल योजना बदलने लगी। अज्ञेय को सम्मिलित करने मे नेमिचंद्र जैन और प्रभाकर माचवे को सतोष ही मिला 'क्योकि' उनका नाम होने रो प्रकाशक मिलने तथा संकलन की प्रतिष्ठा कहीं अधिक होने की सभावना थी। दूसरे इस स्थिति में स्वभावतः उसके प्रकाशन में उनका (अज्ञेय) और भी अधिक रुचि लेना अनिवार्य था। प्रस्ताविक कवियों से कविताएँ लेने का भार जो मध्य भारत मे थे उनसे नेमिचंद्र जैन और प्रभाकर माचवे को दिया गया। वात्स्यायन जी के ऊपर गिरिजा कुमार माथुर से कविताएँ लेने का भार दिया गया। प्रकाशन प्रबध की सारी जिम्मेदारी अज्ञेय को दी गयी। बावजूद इसके अभी बहुत से काम शेष थे, कविताओं का चयन, चयन का

आधार आदि क्या हो। प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि उन्होने 'अपनी नोट बुक और बहुत सी हस्तलिखित रचनाएँ अज्ञेय के पास भेज दी थीं। उनकी कविताएँ बहुत वर्षों तक नेमिचद्र जैन के पास पडी रह गयी थीं। अज्ञेय ने उसी ढेर मे से कविताएँ चुनीं।[२६] अज्ञेय को प्रभाकर माचवे की एक कविता की कुछ पक्तियो के अर्थ के बारे मे दुविधा थी, जिसे उन्होने माचवे को पत्र लिखना दूर करने का प्रयास किया। किन्तु माचवे ने अज्ञेय को उन पक्तियो को बदले हुए रूप मे पढने दोबारा लिख लेने अथवा उस हिस्से या वाक्य को बदल देने तक का अधिकार दे दिया था।[२७] अज्ञेय की राय थी कि प्रत्येक कवि कम से कम २० कविताएँ दे।[२] अज्ञेय के नेमिचंद्र जैन के नाम लिखे २५ सितम्बर ४२ के पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि सपादन मे भी अज्ञेय जी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, परतु महत्वपूर्ण मुद्दो पर सामूहिक निर्णय लिये जाते थे। सामूहिक निर्णय के तहत ही अज्ञेय सपादन कार्यों में नेमिजी का सहयोग लेते रहे। २३ नवम्बर ४३ अज्ञेय ने नेमिजी को लिखते हैं, प्रभाकर की कविता साथ भेजता हूँ। दोनो मे जो पाठ वहाँ ठीक बैठे वह रख लीजिऐगा। उन्होंने अपने परिचय मे भी काट—छॉट की छूट नेमिजी को दे रखी थी।[२'] नेमिचद्र जैन के अनुसार कविताओ को पढकर उनके अतिम चुनाव के बारे मे और उनके प्रस्तुतीकरण के रूप और उद्गम आदि के बारे मे भी अज्ञेय और उनका सयुक्त प्रयास ही था। खुद नेमिचद्र जैन अज्ञेय की कलात्मक रूचि, सूझ और समझ का बडा आदर करते थे और उन्हीं के सुझाव प्राय: अंतिम रूप से स्वीकार्य होते थे।

कविताओं के चयन का कोई आधार था या नहीं उसका कुछ अता पता नहीं चलता। अज्ञेय ने इतना कहा जरूर है कि तार सप्तक में संकलित कवि ऐसे हैं जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं। परन्तु केवल इस आधार पर यह नहीं माना

जा सकत' कि कविताओ के चयन मे प्रयोगशीलता कोई निश्चित मानदण्ड की तरह स्वीकार किया गया है। स्वय अज्ञेय ने भी स्वीकार किया है कि 'प्रस्तुत सग्रह की सब रचनाएँ, प्रयोगशीलता के नमूने है, यह नहीं कहा जा सकता।[30] इसका अर्थ यह नहीं है कि कविताओ के चयन का कोई आधारर था ही नहीं, क्योकि विरेन्द्र कुमार जैन को सप्तक मे सम्मिलित न करने के कारणो मे उनकी 'कविताओं का' अत्यधिक रोमैटिक रहस्वादी स्वर का ही होना है।[31] इसके अलावा वात्स्यायन जी लगातार परिचित और सहकार योजना पर बल देते रहे। यही नहीं उन्होने सम्मिलित सातो कवियो को इस सकलन का प्रकाशन तथा सपादक भी माना। और अपने अपनी जीवनीकार और प्रवक्ता थी। अज्ञेय यह भी मानते हैं यह धृष्टता नहीं है, केवल अपने कर्म का ध्यान भोगने की तत्परता है।[32]

कवियो के अनुक्रम के विषय मे उनका कहना है कि इसमे भी कोई विशेष योजना नहीं है बल्कि यह किसी हद तक आकस्मिक है।' जहॉ वह इच्छित है वहॉ उसका उद्देश्य यही रहा है कि कुल सामग्री को सर्वाधिक प्रभावोत्पादक ढंग से उपस्थित किया जाये। इन वक्तव्यो के बावजूद भी अज्ञेय की सपादकीय दृष्टि मे कुछ नवीनता की बाते अवश्य थी। या उनमे कुछ अपने मूल्य अवश्य थे जो कवियों और कविताओ के चयन मे अप्रत्यक्ष रूप से लागू होते थे। अपने लंबे इंटरव्यू में तार सप्तक के संदर्भ मे उन्होने स्वीकार किया है –– 'मैं यह सोचता हॅं कि कविता में कुछ नई बाते आ रही हैं। उनको सामने लाना चाहिए। और वे फिर चाहे जहाँ से आ रही हो। यह स्पष्ट है कि वह एक शहर तक या एक मण्डल तक सीमित नहीं रह जायेंगी। शायद एक प्रदेश तक ही सीमित नहीं रहेंगी। उनको सामने लाना चाहिए। और इसी दृष्टि से सामने लाना चाहिए कि कविता में एक बुनियादी परिवर्तन हो रहा है।[33]

अज्ञेय की सपादकीय दृष्टि मे यह बात अवश्य रही है कि कविता में जो नयी बात आ रही है उनको सामने लाया जाये। जो बुनियादी परिवर्तन हो रहे हैं उन्हें समझा जाये। ध्यान देने की बात है इसी कारण से वीरेन्द्र कुमार जैन इस संकलन से हट गये। अज्ञेय की दृष्टि मे यह बात भी बडी साफ है कि केवल नये होने के कारण कोई कवि सकलन मे स्थान न पाये बल्कि अधिकतर ये नयेपन के कारण उसे सकलन मे शामिल किया जाये और कविता मे नयापन भाव और शिल्प दोनों के स्तर पर हो।

अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका मे एक सिद्धान्त की बात उठाई है। संग्रहीत कवि सभी ऐसे होगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते है, जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।[34] जबकि 'सप्तक' के पहले योजनाकारी में से एक नेमिचंद्र जैन, इसके विपरीत अपने और अन्य कवियो को उन्हीं अर्थो मे प्रयोग शील नहीं मानते थे। जिन अर्थों में सप्तक के प्रकाशन के बाद विद्वान आलोचको ने अज्ञेय की भूमिका से निकाला।

सपादन संबधी उपर्युक्त तमाम तथ्यो को देखने परखने के बाद दो बातें निर्विवाद रूप से कहीं जा सकती है जो अज्ञेय की सपादकीय दृष्टि में थीं वे हैं एक – कविता मे आ रहा नयापन या हो रहे परिवर्तन और, दो, जिनका कोई अलग संग्रह न आ पा रहा हो। अज्ञेय ने इन सभी कवियों को 'प्रयोगशील' कहा और राहों का अन्वेषी कहा है।' तो ये कवि अपनी कल्पनाभिव्यक्ति के लिए नये रूपों और शैलियों की तलाश मे प्रवृत्त आशय थे और उनका आग्रह जिन्दगी के यथार्थ के अन्वेषण पर ही केन्द्रित था। बदले हुए परिवेश में ये अपने विशिष्ट जीवनानुभव को ईमानदारी से पहचान कर व्यक्त करने की राह तलाश रहे थे। अज्ञेय ने इन्हें अपना सहयोग कर एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति थी।

(घ) विवाद

तारसप्तक के अस्तित्व मे आने तक कई तरह के विवाद रहे हैं जिनमें से नामकरण सबधी विवाद, कवियो के चयन तथा उनके क्रम सबधी विवादो की चर्चा हम पीछे कर आये है। यहाँ हम तार सप्तक सबधी दो महत्वपूर्ण विवादों पर विचार करेगे। इनमे एक है तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष सबधी विवाद और दूसरा उसकी रायल्टी सबंधी विवाद। इनमे नि सदेह एक का हिन्दी साहित्य के इतिहास से तथा दूसरे का सप्तक मे सम्मिलित कवियो तथा सपादक की सामाजिकता से जुडा है। जहाँ तारसप्तक मे उसके प्रकाशन का वर्ष १९४३ दिया जाता रहा है, और हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उसके प्रकाशन का वर्ष यही दर्ज है। उसके सपादक अज्ञेय भी उसी वर्ष को निश्चित करते हैं। वहीं 'तार सप्तक' ये सम्मिलित दो कवि नेमिचंद्र जैन तथा डॉ राम विलास शर्मा इसके प्रकाशन का वर्ष १९४४ मानते हैं। नेमिचंद्र जैन अपने किसी भी परिचय मे तार सप्तक के प्रकाशन वर्ष को १९४४ ही माना है। अभी सद्य प्रकाशित अपने दूसरे कविता सकलन 'अचानक हम फिर' में नेमिचद्र जैन ने तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष १९४४ ही माना है। और अभी अभी प्रकाशित डॉ. रामविलास शर्मा के नाम 'कवियो के पत्र' पुस्तक मे संकलित अज्ञेय के पन्नों से भी इस तथ्य पर कुछ रोशनी पडती दीखती है। इसके प्रकाशन वर्ष संबधी विवाद पर 'अपने ऊपर एकाग्र' सम्यक में नेमि जी कृष्ण बलदेव वैद के प्रश्न का उत्तर देते समय भी १९४४ ही मानते है। कृष्ण बलदेव वैद का सवाल था कि तार सप्तक कब प्रकाशित हुआ था? नेमिचद्र जैन बताते हैं कि १९४४ में निकला था। १९४३ के अंत में छपा था, और १९४४ मे रिलीज हुआ था।[३५] नेमिजी इन बातों की पुष्टि डॉ. शर्मा के नाम अज्ञेय के पत्रो से भी होती है। पत्रों से साफ पता चलता है कि १९४३ के अंत तक तो सामग्री

ही नही जुट पायी थी। दिसम्बर १६४३ के पत्र मे अज्ञेय डॉ शर्मा की कविताएँ न पहुँचने तथा कम होने की शिकायत के साथ, अन्य सामग्री जो पर्याप्त हो शीघ्र भेजने की बात करते है। अज्ञेय १४ दिसम्बर, ४३ के पत्र में राम विलास जी के लिखे पत्र से यह पता चलता है कि इस तिथि तक अज्ञेय जी के पास राम विलास शर्मा की न कविताएँ न थी, परिचय न वक्तव्य। सुविधा के लिए पूरे पत्र को देखना जरूरी है।

भाई, KENILWORTH SHILLONG

14 12 43

आपकी प्रेषित काव्य सामग्री अभी मिली है, धन्यवाद, किन्तु इसके साथ न वक्तव्य है और न परिचय। निश्चय ही आप जजाल समझकर मेरा काम निपटा रहे हो? पर जब आपने इतना कष्ट किया है तो उतना और कीजिये। मैंने पहले ही आग्रहपूर्वक कहा था कि ये दोनो चीजे न भूलियेगा अभी उनके लिए फिर तार दिया है। पत्र के आने जाने में भी १५ दिन लग जाते हैं और काम आगे ही ऐसा पिछडा है कि बस।

सस्नेह,

वात्स्यायन

(वक्तव्य २००० शब्द तक हो सकता है, परिचय ३५० शब्द तक। पिछले हंस मे से सत्य शिव सुन्दर भी दे रहा हूँ, आशा है आप चौकेंगे नहीं।)[35]

अज्ञेय के इस आग्रह के बावजूद रामविलास जी ने अपना वक्तव्य नहीं भेजा। राम विलास जी के परिचय को ही वक्तव्य के स्थान पर सम्मिलित किया गया। तार सप्तक प्रकाशित हो जाने के बाद २ फरवरी, ४४ को नेमिचंद्र जैन रामविलास जी के पास तार सप्तक भेजते हुए लिखते हैं, "आपका वक्तव्य बहुत देर से मिला, तब तक

आपकी कविताओ वाला फर्मा छप चुका था, इसलिए वह दिया नहीं जा सका। मुझे इस बात का व्यक्तिगत भाव से और भी अधिक खेद है। आपके परिचय को ही वक्तव्य के रूप मे इसी से प्रकाशित करना पडा और इसी से उधर परिचय भी अधिक सुदर न हो सका था।''

तारसप्तक के प्रकाशित होते ही नेमिचद्र जैन ने रामविलास जी की प्रतियॉ भी भेजी और साथ ही बधाई का पत्र भी। प्रतियॉ और पत्र २ फरवरी, ४४ की डाक से भेजे गये है। इसी पत्र मे नेमिजी रामविलास जी के वक्तव्य प्राप्ति की सूचना देते है किन्तु तब तक रामविलास जी के हिस्से का फर्मा छप चुका था। मजबूरी में उन्हे 'परिचय' से ही 'वक्तव्य' का काम चलाना पडा। इन तथ्यो से नेमिजी की ही बात प्रमाणित होती है कि तार सप्तक का प्रकाशन १९४३ मे नहीं १९४४ में हुआ था। तारसप्तक का प्रकाशन सग्रह मे सम्मिलित सभी कवियो के आर्थिक सहयोग से हुआ है। इसके लिए ३० रुपये प्रति कवि जमा करने की बात हुई थी, किन्तु ये ३० रुपये देने मे थी प्रभाग चद्र शर्मा असमर्थ थे, ६ जून ५१२ के मूल, (चॉदा) से प्रकार माचवे ने नेमिजी को पत्र लिखकर बताया कि (''मैं प्रभाग से २५ मई को खण्डवा में सवेरे १३० से ४ तक मिला। वह 'आगामी कल' के कारण आर्थिक कठिनाई में है--- तार सप्तक के बारे मे वह तैयार है, पर यह कहना कठिन है कि वह ३० रूप में नकद दे सकेगे।[३५]

तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने बार बार इस बात को दुहराया है कि तार सप्तक का प्रकाशन एक 'सहोद्योगी' योजना है। लेखक ही उसके प्रकाशक और संपादक है। किन्तु रायल्टी वे अकेले लम्बे समय तक रखते रहे। यहाँ उन्होंने 'सहोद्योग' के अपने वचन को नहीं मिलाया। नेमिचंद्र जैन ने जब इस बारे में प्रकाशक

से बात चीत की तो पता चला कि सारी रायल्टी का 'कान्ट्रेक्ट' अज्ञेय जी के साथ इस शर्त पर हुआ है कि वे सम्मिलित कवितयो को उनका हिस्सा देते रहेगे। पर चौथे सस्करण तक अज्ञेय जी ने ऐसा कुछ नहीं किया। नेमिचन्द्र जैन के हस्तक्षेप से यह मामला सुलझा और ज्ञानपीठ वालो ने उनकी अन्य पुस्तको की रायल्टी रोककर अन्य कवियो को उनकी रायल्टी दी। यहीं इस बात पर गौर करना चाहिये कि 'सप्तक के सहोद्योगी' योजना मे यह पहले से तय था कि 'तार सप्तक' की आय से इसी तरह के अन्य प्रकाशन किये जायेगे। पर सम्मिलित कवियो ने इस पर भी ध्यान न दिया।

सन्दर्भ

१ आधुनिक कवि–२ की भूमिका – भूमिका पृष्ठ ११

२ दिनकर – काव्य की भूमिका पृष्ठ ४१

३ दिनकर – काव्य की भूमिका पृष्ठ ५०

४ दिनकर – काव्य की भूमिका पृष्ठ ५०

५ प्रेमचद, प्रगतिशील लेखक सघ का स्थापना भाषण। प्रेम चद के श्रेष्ठ निबंध, पृष्ठ ६५, संपादक डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९८।

६ डॉ नगेन्द्र – विचार और अनुभूति पृष्ठ स ६७

७ करूण सतसई– अवंतिका, जनवरी १९५४

८ ग्राम्या – पत

९ पिघलते पत्थर – रागेय राघव– अवन्तिका जनवरी १९५४।

१० गोस्वामी तुलसीदास, रामचद शुक्ल।

११ तार सप्तक, अज्ञेय भूमिका पृष्ठ नौ –– छठा सस्करण १९९५, ज्ञानपीठ वही

१२. अज्ञेय अपने बारे मे पृष्ट ७८ आकाशवाणी महानिदेशालय, आकाशवाणी प्रकाशन न. कि

१३ वही

१४ वही पृष्ठ ७९

१५ वही पृष्ठ ७९

१६ " " " ८० पर

१७ " " " ७९ पर

१८ श्याम परमार –– साप्ताहिक २१ मार्च, ६७ पृष्ठ १२

१६ भाभूअ प्रसगवश पृष्ठ ५८

२० प्र मा 'अकविता एव कला सदर्भ पृष्ठ ११६'

२१ बदलते परिप्रेक्ष्य – नेमिचद्र जैन पृष्ठ सख्या १६१

२२ अज्ञेय अपने बारे मे पृष्ठ ८३

२३ नेमिचद जैन, ब.प पृष्ठ १६४

२४ अज्ञेय अपने बारे मे पृष्ठ ८३

२५ अज्ञेय का पत्र नेमि चद्र जैन के नाम – ब प्र प्रे पृष्ठ १६३

२६ अज्ञेय का पत्र नेमि के नाम – ब प्र प्रे पृष्ठ १६४

२७ अज्ञेय का पत्र नेमि के नाम – ब प्र प्रे १६८७ पृष्ठ १६

२८ अज्ञेय, ता स प्र स की भूमिका –– पृष्ठ स १२

२६ नेमिचद, पृ १६४

३० तार सप्तक भूमिका अज्ञेय, पूर्ववत्।

३१ अज्ञेय अपने बारे मे पृष्ठ ७६

३२ तार स भूमिका

३३ उपर्युक्त

३४ उपर्युक्त

३५. सम्यक – पृष्ठ १५०, राजकमल प्रथम, १६६४

३६ कवियो के पत्र राम विलास शर्मा के नाम पृष्ठ ६६, संस्करण २०००, वाणी प्रकाशन।

३७. नेमि ब.प से. १६३।

अध्याय - दो
तार सप्तक की 'भूमिका'

"तार सप्तक मे सात कवि सगृहीत हैं। सातो एक दूसरे के परिचित है– बिना इसके इस ढग का सहयोग कैसे होता है? किन्तु इससे यह परिणाम न निकाला जाये कि 'ये कविता के किसी एक स्कूल के कवि है, या कि साहित्य–जगत् के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक है। बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही हैं – राही नहीं, राहो के अन्वेषी। उनमे मतैक्य नहीं है। सभी महत्वपूर्ण विषयो पर उनकी राय अलग–अलग है। जीवन के विषय मे, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में काव्य वस्तु और शैली के छद और तुक के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय मे उनका आपस मे मतभेद है।"

– 'अज्ञेय'

तार सप्तक प्रथम संस्करण की भूमिका

(क) 'राहो के अन्वेषी' अर्थ और विश्लेषण

तार सप्तक के पहले सस्करण की भूमिका मे सकलित कवियो के लिए कहा गया अज्ञेय का 'राहो का अन्वेषी' पद सभी कवियो के लिए ऐतिहासिक महत्व तो रखने ही लगा। बाद मे इनकी व्याख्या और महत्व को रेखाकित करने के लिए भी इसे कुजी की तरह प्रयोग किया जाता रहा। एक तरह से यह पद अपने पूर्व के पदो से जुडकर पूरी भूमिका का केन्द्रीय पद हो जाता है। इस पद ने 'तार सप्तक' के साथ ही, बाद की हिन्दी कविता को भी दिशा निर्देश दिया है। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' कवियो की मन स्थिति को रेखाकित करने के लिए ही इस पद का प्रयोग किया है। इस पद मे 'तार सप्तक' के अन्य अनेक कवियो की कविता और जीवन संबंधी अपनी भावनाए भी अन्तर्निहित है। यही यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'राहो के अन्वेषी' के भाव लिए पद 'तार सप्तक' के अन्य दो कवियो क्रमशः मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन के वक्तव्य मे आए है। उन पदो पर जाने के पहले अज्ञेय के पूरे पद को देख लेना होगा। अज्ञेय एकत्रित होने से एक स्कूल के कवि होने का निष्कर्ष न निकालने की बात करते है। ये सातो कवि "कविता के किसी एक 'स्कूल' के कवि है या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं। बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है। किसी मजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[1] मुक्ति-बोध और नेमिचंद्र जैन के वक्तव्य निश्चय ही इस भूमिका के पूर्व लिखे गये हैं। क्योकि सपादकीय भूमिका, सारी सामग्रियों के उपरान्त लिखी गयी है। यदि ऐसा न भी हो तो यह राहों के अन्वेष की बात इन कवियों की एक प्रबल इच्छा तो है ही यह

मानना पडेगा। मुक्तिबोध अपने पहले सस्करण के वक्तव्य मे कहते हैं "ये कविताए अपना पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति मे छिपा है।"[२] मुक्तिबोध का पद 'अपना पथ ढूँढने वाले बेचैन मन' की ही दूसरे शब्दो मे प्रस्तुति है 'राहो के अन्वेषी' पद। बल्कि उस बेचैनी के अज्ञेय ने सकुचित ही किया है। जहॉ मुक्तिबोध के पद मे मुक्तिबोध की कविता संबंधी बेचैनी साफ तौर पर दिखती हैं वहीं अज्ञेय के पद मे एक 'सामूहिक तलाश' का भाव अधिक दिखता है। मुक्तिबोध की तरह ही नेमिचद्र जैन ने भी अपने वक्तव्य मे 'राह की खोज' से बढकर आगे की पीढियो के लिए पगडडी तैयार करने की बात की हैं। कविता की ऐसी पगडडी जिसे खूँद पीटकर कविगण शायद कभी राज मार्ग बना लें। नेमिचद्र जी कहते हैं। वह कवि "आने वाली पीढियों के लिए एक नयी पगडण्डी तैयार करता चलता है जिसे खूँद पीट कर किसी देने शायद प्रशान्त राय मार्ग निर्मित हो सके।"[३]

मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन के वक्तव्यों मे आए, 'पथ ढूँढने वाले' तथा 'नयी पगडण्डी' जिसे खुंद पीटकर बाद के कवि राज मार्ग बना लेंगे का ही भाव सार है 'राहो के अन्वेषी'। यह मानने मे जिन्हें किंचित असुविधा हो वे इन वक्तव्यों के मर्म को समझने की कोशिश करे। दोनों कवियों ने राह (पथ, पगडण्डी) के अन्वेष (ढूँढने, नयी बनाने) की बात अपने वक्तव्य के निचोड के रूप में रखी है। इन दोनों कवियों के लिए कविता में राह खोजना और बनाना एक अघोषित मिशन की तरह है। जिन स्थितियों को अज्ञेय तत्कालीन कविता में रेखांकित करते हैं उन्हीं स्थितियों को मुक्तिबोध और नेमिचंद्र जैन अपने काव्यगत दृष्टि से प्रकाशित करते हैं। यदि मुक्तिबोध अपनी कविताओ को पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति के रूप में

लेते है तो नेमिचद्र जैन नयी पगडण्डी का निर्माण सक्राति काल के कवि की जगह के रूप मे देखते हैं। इस पद (राहो के अन्वेषी) का अर्थ, जिस रूप में अज्ञेय लेते है बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'तार सप्तक' का प्रकाशन १६४३ मे हुआ। इसमें संकलित कविताए जरूर १६३६–३८ के आस–पास की हैं। एक तरह से 'तार सप्तक' हिन्दी कविता के संक्राति युग मे प्रकाशित हुआ। प्रगतिशील कविता का आंदोलन इन्हीं वर्षो मे रुढि ग्रस्त हो रहा था। बहुत से कवियो के पास कोई अन्य राह निकाल पाना मुश्किल हो रहा था। छायावाद की कविता 'छद मुक्ति' तथा 'छद के बध' से मुक्त होकर अपनी भूमिका निभा चुकी थी। छायावाद के दोनो महत्वपूर्ण कवि निराला और पत अपनी कविताओ मे 'नये पत्ते' और 'नये पल्लव' खिला रहे थे। निराला के 'कुकुरमत्ता' और 'तार सप्तक' की कविताओ का रचनाकाल लगभग एक है। यह पूरा दौर हिन्दी कवियो के द्वारा नयी राहो के अन्वेष का है।

अज्ञेय के प्रथम् सस्करण के वक्तव्य मे ही नहीं पूरे 'तार सप्तक' की कविताओं मे कवि नयी राहे खोज और बना रहे थे। यह राह की खोज क्या है का एक उत्तर अज्ञेय देते है "सभी उस परमतत्व की शोध में ही लगे है, जिसे पा लेने पर कसौटी की जरूरत नहीं रहती, बल्कि जो कसौटी की ही कसौटी हो जाती है।"[४] यह 'परमतत्व' कविता में जिस तरह प्राप्त किया जायेगा या कविता का परमतत्व क्या होगा। क्या कविता के भीतर यह परमतत्व निहित होगा या कविता द्वारा यह परमतत्व 'शोधित' होगा। यहां 'राहो के अन्वेष' में परमतत्व के शोध को मिलाकर देखने पर हम 'राहो के अन्वेषी' का अर्थ अधिक सुगमता से प्राप्त कर सकेगें। कविता का 'परमतत्व' जो कि स्वयं अपनी कसौटी है। जिसकी 'परख' के लिए किसी 'पारख' की आवश्यकता नहीं। आखिर है क्या? क्या वह कविता के गहनतम में कवि की आँख

नही। वह ऑख जिसमे कवि बार–बार जब राह भूलता है, राहहीन हो जाता है तब अपनी राह खोजता है बनाता है–

भूल कर जब राह

जब–जब राह, ५

भटका,

तुम्ही झलके हे महाकवि

सघन तम की ऑख बन

मेरे लिए–

(– निराला से)

शमशेर बहादुर सिह की यह कामना यह 'राह' और 'ऑख' की प्राप्ति ही 'तार सप्तक' के कवियो की राह की खोज नहीं है। फिर भी 'तार सप्तक' के कवियों के 'राह के अन्वेष' मे कविता के लिए छायावाद, प्रगतिवाद के बाद की कविता का राह निर्माण सम्मिलित है। और यदि हम सप्तक की कविताओ को रखकर देखे तो इस राहो के अन्वेष को अच्छी तरह से समझ पाएगे।

'तार सप्तक' की कविता मे प्रगतिशीलता आग्रह नहीं सस्कार की तरह कवियों के भीतर रच बस गयी थी। इस लिए और छायावाद से एक आलोचनात्मक संबंध विकसित हो गया था इसलिए भी कविता मे एक नयी राह खोजना जरूरी था। यदि कविता उसी पुरानी लीक पर चलती रह सकती थी तो यह 'राहों का अन्वेष' अनावश्यक हो जाता। मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जेन, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, राम विलास शर्मा और भारत भूषण अग्रवाल तथा सपादक अज्ञेय सभी ऐसा नहीं कि राह की खोज मे ही लगे थे। इस राहों के अन्वेष ने कविता में 'प्रयोग' को बढ़ावा

दिया। इरा 'राहो' के अन्वेष मे 'तार सप्तक' के बाहर के भी कवि लगे थे। ऐसा नहीं कि कविता की राह खोजने मे सिर्फ 'सप्तक' के कवि ही लगे थे। मुक्तिबोध इस खोज मे ''कलाकार की 'समानान्तर गामी प्रवृत्ति' (माइग्रेशन इेस्टिंक्ट) पर बहुत जोर' • देने के साथ ही अपने समय के बैविध्यमय, उलझन भरे, रंग–'बिरंगे जीवन को देखने के लिए ''अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उडकर बाहर''[७] जाने को आवश्यक मान चुके थे। इसी राह की खोज मे वे युग सधि काल मे कार्यकर्ता की उत्पत्ति का भी खण्डन करते हुए कलाकार की उत्पत्ति पर बल देते हैं।

नेमिचद्र जैन इस दिशा मे कवि की सीमा को समझते हैं। वे देखते हैं ''संक्राति काल के कवि की कठिनाइयॉ बहुत है। अपना मार्ग पहचानने के लिए और फिर उसी पर बने रहने के लिए मध्यवर्गी प्राणी कवि को निरन्तर बुद्धि का ही मुँह ताकना पड़ता है।'' नेमिचद्र मानते है ''शायद इसी लिए इस युग में श्रेष्ठ कविता अभी हिन्दी के लिए सम्भव नहीं।''' नेमि जी देख रहे हैं कि उस युगम मे श्रेष्ठ कविता सम्भव नहीं रह गयी है। यह श्रेष्ठ कविता का सम्भव न रह पाना ही इस 'राहो के अन्वेष' के मूल मे निहित है। मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन ने अपनी कविताओं मे भी इस राहो के अन्वेष को प्रस्तुत किया है। ''कवि गाता हैं–

सक्रांतिकाल का कलाकार कवि गाता है।''[१०]

मुक्तिबोध इसी प्रश्न को 'मृत्यु और कवि' में उठाते हैं। वे कविता को किताब से निकाल कर घर घर तक फैला देने को उद्यत है।–

''तुम कवि हो, ये फैल चले मृदु गीत निबल मानवता, घर–घर
ज्योतित हों मुख नव आशा से, जीवन का गति, जीवन का स्वर।''

ऐसा नहीं कि 'तार सप्तक' के सारे कवि 'राहों के अन्वेषी' ही थे। अज्ञेय की

इस घोषणा को सबके ऊपर लागू करने का एक अर्थ यह होगा कि सभी एक ही स्कूल के कवि है।-जबकि अज्ञेय के भी वक्तव्य का भी निहितार्थ यह नहीं है। क्योकि जैसे ही हम यह मानते हैं कि सभी कवि राहो के अन्वेषी है तो एक 'नया स्कूल' 'राहों के अन्वेषी' का बन जाता है। हालाकि 'तार सप्तक' के बारे में यह एक सामान्य धारणा बनाने की कोशिश की गयी कि 'तार सप्तक' एक ही स्कूल के कवियों की रचना है और यह स्कूल है 'राहो का अन्वेषी'। इस भ्रम का निवारण जितना 'तार सप्तक' के बाहर के लोगो ने नहीं किया उससे अधिक 'तार सप्तक' में संकलित कवियो ने स्वय किया। नेमिचद्र जैन ने 'तार सप्तक' के दूसरे वक्तव्य में इस तरह के किसी भी प्रयास का बहुत कडाई के साथ खण्डन किया। वे कहते हैं 'तार सप्तक' के कवि न तो स्वयं ही किसी भी रूप में किसी भी अंश तक"[५] किसी एक खास स्कूल की प्रवृत्ति से परिचालित थे ' न वे किसी भी प्रकार से संपादक की वैचारिक, सैद्धातिक अथवा सगठनात्मक प्रयत्नो के अग थे।"[३] अज्ञेय ने 'राहों के अन्वेष' को न केवल रचनात्मक संसार में तलाशा बल्कि काव्य के बहिरंग पक्ष में भी पर्याप्त परिवर्तन। किया इसके लिये वे कहते हैं "तार सप्तक की कविता वैसी जड़ाऊ कविता नहीं है।""[४] यहा ध्यान देने की जरूरत है 'तार सप्तक' के पहले की "कविता से प्रायः चारो ओर बडे-बडे हाशिये देकर सुंदर सजावट के साथ छपती रही हैं।"[५] वे आगे लिखते है "तार सप्तक में रूप सज्जा को गौड मानकर अधिक से अधिक सामग्री देने का प्रयास किया गया है।"[६]

'तार सप्तक' के अन्य कवि जिनमें भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, राम विलास शर्मा अपने वक्तव्य और अपनी कविताओं में नयी राहें बनाते दिखते हैं। भारत भूषण अग्रवाल 'अपने कवि से' कविता मे कविता की संकुचित

जीर्ण और वृद्ध हो गयी कवि की भाषा और खोखले शून्य शब्द जाल को कवि से तोड देने की बात करते है। वे कहते हैं 'सड गयी आज यह गिरा अबल' उन्हे लगता है कि छाया मे भाषा ने उनके छोटे से जीवन को असत्य अपदार्थ हीन कर दिया है। वे महसूस करते है कि उनको आज देववाणी की जरूरत नहीं है। उन्हे विश्वास है कि वे जीवन की भट्ठी मे भाषा को खुद ढालेंगे और उसका जी चाहा रूप भी बना लेगें। यहा देववाणी निश्चय ही 'उच्च वर्ग' की भाषा के रूप मे इगित हैं, यदि हम ध्यान दें तो समझ सकते हैं कि भाषा का ऐसा सस्कृतनिष्ट रूप प्रयोग करने का आग्रह किन कवियो का था। १६४३ के आस–पास प्रगतिशील आदोलनो के बावजूद भाषा बड़े पैमाने पर अपनी तत्समता से नहीं उबर पायी थी। कविता की भाषा को उस तत्समता से मुक्ति दिलाने के लिये भारत भूषण अग्रवाल ने अपनी काव्य भाषा को, बोलचाल के बहुत करीब रखा।

"अपनी मिट्टी के पुतलों मे ही अपना कवित्व
हमको न जरुरत आज देववाणी की, हम खुद ढालेंगे
जीवन की भट्ठी मे भाषा, जो चाहा रूप बना लेगे।"

(– 'अपने कवि से'[*])

प्रभाकर माचवे ने बहुत सारे नये छंदों को संभव बनाया, उन्होंने अन्य भाषाओं के छदो को भी हिन्दी मे जगह दिया। जहा उन्होंने एक ओर निराला द्वारा हिंदी में लायी गयी मुक्त विषम चरणावर्तनी, अतुकान्त, अक्षर मात्रिक छंद पर आश्रित तालात्मक पद्य रचना पद्धति को श्रेयस्कर समझा वहीं मसनवी और पोवाडे के ढंग पर लिखे जाने पर जोर दिया। प्रभाकर माचवे ने हिंदी में सॉनेट को संभव बनाया,। सॉनेट की राह एक तरह से माचवे ने हिंदी कविता में खोली। गिरिजा कुमार माथुर ने मुक्त

छद का सपूर्ण विधान अपनी कविताओ मे रचा है। उन्होने कवित्त के विरामो को लेकर कितने ही प्रकार के मुक्त छद पक्तिया निर्मित की है। गिरिजा कुमार माथुर ने अपनी कविता 'आज हैं केसर रंग रगे' को सवैये के विरामो पर स्थित एक नये प्रकार के बहुत सगीतमय मुक्त छद मे लिखा है। यहा हम परपरागत छदो को तोड़कर 'तार सप्तक' के कवि द्वारा एक नयी राह बनाते देखते है। कुछ इसी तरह का काम राम विलास शर्मा ने भी अपनी कविताओ में किया है। उन्होने अपनी 'दाराशिकोह' कविता मे जिसका छद रूबाई है, की पक्तियो का निर्माण घनाक्षरी की पंक्ति को बीच से तोडकर किया है इस सोलह अक्षर की पंक्ति मे उन्होंने सॉनेट और ब्लैंक वर्स (अनुकांत छद) रचा है।

उपर्युकत विवेचन से हम देख सकते हैं कि कमोवेश पूर्व नियोजित न होते हुये भी 'तार सप्तक' के सभी कवि 'राहो के अन्वेषी' है। जहा मुक्तिबोध, नेमिचद्र जैन अपने वक्तव्यो मे क्रमशः 'पथ ढूँढने' और 'नयी पगडण्डी' बनाने का प्रस्ताव रखते हे वहीं अज्ञेय पूरे 'तार सप्तक' के कवियों को ही एक स्कूल का न मानते हुये भी 'राहों का अन्वेषी' घोषित करते हैं। उनके 'राहों के अन्वेषी में जहां कवि 'परम तत्व की शोध' में लगे दिखते है वहीं कवियों द्वारा कविता में किये जा रहे नये परिवर्तनों का भी सकेत मिलता है। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर आदि ने अपनी कविताओ मे नयी राहो को आविष्कृत किया है। इस सबने नये छंदों को हिन्दी मे संभव बनाया है तथा कविता को नयी राहें प्रदान की हैं।

(ख) प्रयोगवाद - नामकरण

वैसे तो साहित्य मे प्रयोग की परपरा अत्यत प्राचीन है हर युग का कवि कोई न कोई नया प्रयोग करता ही है हम कह सकते है कि कवि के नये प्रयोगों से ही उसकी प्रतिभा सिद्ध होती है। प्राचीन से लेकर वर्तमान युग तक का हिंदी साहित्य ऐसे अनेक प्रयोगो से भरा हुआ है। सस्कृत साहित्य मे उसके उपरांत वीरगाथा काल से लेकर भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल तक हिदी साहित्य में कथ्य और शिल्प दोनो के स्तर पर प्रयोग देखे जा सकते हैं। यह मानने में कोई उज्र नहीं कि साहित्य के विकास मे 'प्रयोग' का अपना महत्व है लेकिन 'प्रयोग' और 'प्रयोगवाद' दोनो दो विशेष स्थितियो के द्योतक है। इन दोनो मे उसी तरह का लेन–देन है जैसे प्रगति और प्रगतिवाद में। प्रगति तो हर समाज की आवश्यकता है पर प्रगतिवाद कहते ही १६३६ मे शुरू हुआ प्रगतिशील आदोलन उभर आता है।

प्रयोगवाद का विधिवत आरम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन से आरभ होता है। 'तार सप्तक' की भूमिका में उसके संपादक अज्ञेय ने 'प्रयोगशीलता' और 'प्रयोगशील' जैसे पदों तथा कविता को 'प्रयोग' का विषय मानने वाली बातों का हवाला दिया था। हालाकि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक मे 'प्रयोग' और उसके 'वाद' दोनों को बेमानी सिद्ध किया है। वस्तुतः 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण में अपने को 'प्रयोग का वादी' न मानते हुये भी अज्ञेय द्वारा 'प्रयोग', 'प्रयोगशील' और 'प्रयोगशीलता' जैसे पदों के बार–बार इस्तेमाल किये जाने के कारण आलोचकों ने उन्हें 'प्रयोग के वाद' का सस्थापक घोषित करने में काफी सुविधा महसूस की। अज्ञेय ने अपने वक्तव्य में कवि की सबसे बड़ी समस्या और अनेक समस्याओं इत्यादि में साधारणीकरण और कम्यूनिकेशन (संप्रेषण) को ही कवि कर्म की मौलिक समस्या माना है। इसे ही वे कवि

को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बडी शक्ति मानते हैं। आगे वे लिखते है कि "प्रयोग सभी कालो के कवियो ने किये है यद्यपि किसी एक काल मे किसी विशेष दिशा मे प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रो मे प्रयोग हुये हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रो का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे अभी नहीं छुआ गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"[1] अपने इसी वक्तव्य मे अज्ञेय पुन प्रयोगशीलता शब्द का प्रयोग करते है वे लिखते है "जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी सपूर्णता मे पहुँचाया जाये यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"[18] यहा यदि हम ध्यान दे तो अज्ञेय ने प्रयोग, प्रयोगशील और प्रयोगशीलता का बहुधा इस्तेमाल किया है। अपने वक्तव्य और भूमिका मे भले ही अज्ञेय ने इन शब्दों का प्रयोग सुचिंतित मतव्य से न किया हो पर इससे ध्वनि प्रयोग के किसी सुनियोजित आंदोलन की निकलती है। प्रयोग और प्रयोगवाद पर शुरू होने वाले विवाद के पीछे अज्ञेय द्वारा 'तार सप्तक' मे दिया गया यह वक्तव्य ही था कि "सग्रहीत कवि सभी ऐसे होगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते है।"[20] अज्ञेय द्वारा बार–बार 'प्रयोग' करने से ही 'तार सप्तक' की कविता को प्रयोगवादी कविता के आंदोलन के रूप मे इंगित किया गया और चाहे अनचाहे रूप मे अज्ञेय को इसका नेतृत्व करना पड़ा। यहां ध्यान देने की आवश्यकता है कि मुक्तिबोध ने भी अपने वक्तव्य में 'प्रयोग' शब्द का इस्तेमाल किया है। वे लिखते हैं "जीवन के इस वैविध्यमय विकास स्त्रोत को देखने के लिये इन भिन्न–भिन्न काव्य रूपों को, यहा तक कि नाट्य तत्व को कविता में स्थान देने की आवश्यकता है। मैं

चाहता हू कि इसी दिशा मे प्रयोग हो।"[२१] मुक्तिबोध ने जिस दिशा में प्रयोग पर बल दिया है उसमे काव्य रूपो विशेषकर नाट्यतत्व को भी कविता मे स्थान देने की आवश्यकता की ओर इगित है। अपने 'प्रयोगवाद' शीर्षक लेख मे मुक्तिबोध उसे साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप मे देखे जाने पर जोर देते हैं। प्रगतिवादी आलोचक शिवदान सिह चौहान 'प्रयोग' शब्द का शाब्दिक अर्थ कोई प्रयत्न किसी सिद्धांत को प्रमाणित करने के लिये किया गया तजुर्बा, अज्ञात वस्तु का अनुसधान करने या तजुर्बे के जरिये खोजने की क्रिया से लगाया है। वे मानते हैं कि "हमारे देश मे नई कविता के प्रवक्ताओ का ऐसा दल खडा हुआ है जो एक खास किस्म की आत्मनिष्ठ तथा व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की ही कविता को प्रयोगवादी, आधुनिक या नयी कविता घोषित करता है और कविता की भाषा, लय, छन्द, शैली आदि मे किये गये एक विशेष प्रकार के प्रयोगो को ही प्रयाग मानता है।"[२२] शिवदान सिंह चौहान के बरक्स रामविलास जी मानते है कि "प्रयोगवाद की शुरूआत 'तार सप्तक' से नहीं होती उसकी शुरूआत होती है सन् ४७ में प्रतीक से।"[२३] वे आगे लिखते हैं कि जहां तक उन्हे मालूम है कि "सन् ४७ से पहले प्रयोगवाद शब्द का व्यवहार नहीं हुआ। सन ४६ में शमशेर ने 'तार सप्तक' की जो आलोचना नया साहित्य में की थी उसमें प्रयोगों का जिक्र है, प्रयोगवाद का नहीं। प्रयोगवाद शब्द की जरूरत तब हुयी जब प्रगतिवाद के विरोध मे एक नये वाद को स्थापित करना जरूरी हुआ।"[२४] 'तार सप्तक' की पहली समीक्षा करते हुये शमशेर बहादुर सिंह ने 'तार सप्तक' के 'प्रयोग' को रेखांकित करते हुये उसकी इन विशेषताओं को बहुत सफल नहीं माना है। शमशेर मानते हैं कि "एक तो यह कि मौलिक रूप से 'तार सप्तक' के प्रयोग अन्यत्र कई और कवियों के इससे काफी पहले के संग्रहों मे मिल जायेंगे।"[२५] यहां उन्होंने निराला, पंत,

नरेन्द्र शर्मा की प्रयोगमूलक कविताओ का हवाला भी दिया है।

वहीं कवि पत ने रेडियो की सन् ५१ की एक गोष्ठी मे जिसमे उनके साथ भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, धर्मवीर भारती और सुमन ने भाग लिया था मे पत ने कहा था कि ''प्रयोगवादी कविता का इतिहास प्रसाद से आरम्भ होता है। सुमन ने कहा पंत का 'पल्लव' बहुत बडा प्रयोगवादी काव्य है।''[२६] हिंदी की 'प्रयोगवादी कविता' लेख मे प्रभाकर माचवे नें १९५२ मे अपने को प्रयोगशील और प्रयोगवादी कहा था। १९५२ में ही नामवर सिंह ने प्रयोगवाद की आलोचना करते हुये लिखा कि ''प्रयोगवादी कवि कभी विषय वस्तु की चर्चा नहीं करते। रामविलास जी प्रयोगवाद की शुरूआत प्रगतिवाद पर आक्रमण से मानते है। डॉ देवराज ''अतिव्याप्ति को बचाने के लिये 'नई' के बदले 'प्रयोगवादी' विशेषण का प्रयोग करते है।''[२७] डॉ. देवराज लिखते हैं ''हमारा युग प्राचीन मूल्यो का सम्पूर्ण विघटन उनके प्रति पूर्ण अनास्था का युग है, इसलिये हमारे कवियों की दृष्टि उनके देखने और प्रतिक्रिया करने का तरीका भी पूर्णतया बदल जाना चाहिये। प्रयोगवादी कविता यही करना चाहती है।''[२८] डॉ. देवराज प्रयोगवाद की उत्पत्ति को रेखाकित करते हुये बताते हैं कि ''अग्रेजी में प्रयोगवादी जैसी कविता प्रथम महायुद्ध के बाद के अनास्था मूलक वातावरण में उद्भूत हुयी . हिंदी प्रयोगवाद भी केवल युग से प्रभावित नहीं है। वह बहुत हद तक इलियट, पाउण्ड आदि की शैली के अनुकरण में उत्थित हुआ है।''[२९] वे ऐसा इसलिये कह पाते हैं कि स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कवि देश के निर्माण, उसकी सृजनात्मक शक्तियों के पुनर्विकास के सशक्त स्वप्न भी देख सकते थे– नयी स्फूर्तिदायक जीवन दृष्टियों की परिकल्पनाएं भी कर सकते थे। इन सारे विश्लेषणों से यह बात स्पष्ट है कि प्रयोगवाद के सूत्रपात कर्ता 'तार सप्तक' के संपादक अज्ञेय

ही है। डॉ नामवर सिह के अनुसार ''प्रयोगवाद नाम चलने का कारण 'तार सप्तक' के सपादकीय तथा कुछ अन्य वक्तव्य है। इस सज्ञा के बीज वही हैं ... यह प्रयोग शब्द अग्रेजी कविता मे प्रचलित 'एक्सपेरिमेट' के ही वजन पर हिंदी मे चला था, लेकिन हिदी मे जो 'प्रयोगवाद' चल पडा उसके लिये अग्रेजी मे 'एक्सपेरिमेंटलिज्म' नामक कोई वाद नहीं है।''[३०] नामवर सिह के शब्दो मे ''हिन्दी कविता के पाठको में 'प्रयोगवाद' की चर्चा 'तार सप्तक' कविता सग्रह (४३ ई.) से शुरू हुयी। 'प्रतीक' पत्रिका (जुलाई ४७–५२) से उसे बल मिला और दूसरा सप्तक कविता संग्रह (५१ ई.) से उसकी स्थापना हुयी।''[३१] नामवर सिंह 'प्रयोगवाद' के दूसरे पहलू में नकेन के प्रपद्यो को रखते हैं। जो अज्ञेय के 'प्रयोगवाद' के विरोध मे होते हुये भी नामवर सिंह के अनुसार उसी की एक शाखा है। प्रयोगवाद के नामकरण में जितना ही उसके - विरोध मे आहुति दी गयी उतना ही वह जोर पकडता गया। अज्ञेय ने दूसरा सप्तक की भूमिका मे यह प्रश्न उठाया विशेषकर दूसरा सप्तक के कवियों के संदर्भ मे कि क्या ये रचनाए प्रयोगवादी हैं? उन्होने आगे कहा ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे है, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने–आप मे इष्ट का साध्य नहीं है।''[३२] अज्ञेय ने 'प्रयोगवाद' के भूत से पिण्ड छुड़ाने की जितनी कोशिश की सब बेकार गयी, उन्होंने कहा ''हमे 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।''[३३] अपनी इसी भूमिका में अज्ञेय ने कहा 'प्रयोग' अपने आप में ईष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है।''[३४] यहां नंद दुलारे वाजपेयी के 'प्रयोगवाद' संबंधी निष्कर्षों को भी देखा जाना चाहिये। जिसमें उन्होंने यह परिणाम निकाला कि 'प्रयोगवादी कविता उन कवियो की कविता होती है जिनमें आपस में

मतभेद हो।"[34] प्रयोगवाद के नामकरण पर विचार करने के बाद अब हम उसकी उत्पत्ति पर सक्षेप मे विचार करेगे।

हिन्दी कविता मे प्रयोगवाद एक काव्यादोलन का बोध कराता हैं 'प्रयोगवाद' की उत्पत्ति को लेकर अनेक तरह के मत प्रचलित हैं, अधिसंख्य लोग अज्ञेय को 'प्रयोगवाद' का पुरस्कर्ता और 'तार सप्तक' से उसका आरम्भ मानते हैं। किन्तु 'नकेन' के कवि केसरी कुमार 'प्रयोगवाद' का आरम्भ नलिन विलोचन शर्मा की १९३७–३८ मे लिखी कविताओ से मानते है। केसरी कुमार अपने लेख 'प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्टभूमि' मे लिखते है कि "प्रयोगवाद पर इतना कुछ लिखे जाने के बाद भी शायद यह कह देने की जरूरत है कि हिंदी कविता मे प्रयोगवाद का वास्तविक आरम्भ १९३६–३८ ई मे लिखी गयी नलिन विलोचन शर्मा की कविताओ से होता है।"[35] वहीं गिरिजा कुमार माथुर 'प्रयोगवाद' का मूल तत्व निराला की कविताओं मे स्थित मानते हैं।[36]

बाल कृष्ण राव, पंत और निराला को प्रयोगवाद का आरम्भ कर्ता मानते हैं। उनका मानना है कि "प्रयोगशील कविता छायावाद युग से ही आरम्भ हो गयी थी। युगवाणी के पंत तो पूर्णतया प्रयोगशील थे ही। पल्लव और वीणा में भी भाषा और छंद विधान के अनेक (उस परिस्थिति में साहसपूर्ण) सुंदर और सफल प्रयोग हिंदी ससार के सामने आ चुके थे। निराला जी ने तो अपने प्रयोगों से क्रांति मचा दी थी। छद और लय के उनके अनेक प्रयोग आज की प्रयोगशील कविता से भी अधिक चौकाने वाले थे, इससे भी अधिक आतंकित और आकर्षित करने वाले सिद्ध हो चुके थे।"[37] डॉ. राम बचन राय को दिये गये एक इंटरव्यू में अज्ञेय ने प्रयोग संबंधी मूल श्रीधर पाठक और शिवाधार पाण्डेय की कविताओं में माना है। अज्ञेय का विचार है

कि ''मनु जी, मनु जी यह तुमने क्या किया'– कविता मे पहली बार श्रीधर पाठक ने आदमी और देतवा का अतर स्थापित किया। मनुष्य को देवता से अलग रखकर देखने का यह प्रथम प्रयास था आगे चलकर 'तार सप्तक' मे इसका विकास हुआ। इसके अलावा शिवाधार पाण्डेय की कविताओ मे भी प्रयोग संबंधी मूल ढूँढा जा सकता है।

'चपा चमेली दोनो सहेली।

बगिया मे लगी विलास करने।''[३५]

अज्ञेय की उपर्युक्त धारणा को पक्ष में अनेक तर्क व तथ्य दिये जा सकते हैं। नामवर सिह का मत है कि 'तार सप्तक' के पहले से हिन्दी में कविता अपना रूप बदल रही थी। उनका कहना है कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन के चार पाच वर्ष पूर्व 'तार सप्तक' के कवियो के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन भवानी प्रसाद मिश्र जैसे अनेक समर्थ कवि नए ढग की काव्य रचना कर रहे थे। इस बीच नरेन्द्र शर्मा भी रूमानियत से अलग रहकर नए काव्य प्रयोग किये। निराला की अनामिका मे सकलित १६३७–३८ की कविताओं और आगे चलकर १६४० में प्रकाशित 'कुकुमुत्ता' शीर्षक लंबी कविता से स्पष्ट है कि हिन्दी में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के पहले ही नए परिवर्तन की जोरदार हवा बह चुकी थी। रूपाभ, उच्छृखल' जैसी अल्पकालिक एवं हंस, विशाल भारत जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाएं इस परिवर्तन का उद्घोष कर रहीं थी। इनके अतिरिक्त माखन लाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर' भी क्षेत्रिय प्रतिभाओं की नयी रचनाएं प्रकाश में ला रहा था। 'तार सप्तक' इसी जीवत परिवेश की उपज और एक अभिव्यक्ति है।''[४०]

'तार सप्तक' के एक कवि गिरिजा कुमार माथुर 'प्रयोग' के 'आरम्भ कर्ता' और

व्यय आरम्भ हुआ जैसे प्रश्नो को निरर्थक मानते हैं। वे इसे विचार धारा मानते हैं। और निश्चय ही विचारधारा हमेशा एक अनहद नाद हुआ करती है। वे बहुत हद तक 'प्रयोग' के आरम्भ के लिए उसके पूर्व की कविता मे रूढ़ि की स्थिति को मानते हैं उनका कहना है "छायावाद की उत्तरकालीन कविता में एक स्पष्ट रूढ़िवादिता भर गयी थी और उसके नाम की मात्र लकीर पीटी जाने लगी थी। सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियो के कारण निराशा का एक व्यापक तत्त्व हमारे तत्कालीन काव्य में आया था।"[४१] ऐसी स्थिति से कविता को बाहर निकालने के लिये "छायावादी अनादि सौंदर्य के बदले युगान्त के गिरते हुये पीले पत्ते की ओर देखने लगे थे, वेदान्त और विद्रोह के कवि निराला सघर्ष कालीन समाज पर कटुतिक्त व्यग्य कर रहे थे।"[४२] बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' जूठे पत्ते चाटते हुये पशुवत इंसानों को देखकर सिर पीट रहे थे। सियाराम शरण गुप्त, दिनकर, बच्चन, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र अचल आदि रूमानी कवियों में छायावाद की निराशा अब अरूचिकर हो गयी थी। हम कह सकते हैं कि सन् ३५ के आस–पास नई कविता में इस प्रकार के चिन्ह उभरने लगे थे। 'तार सप्तक' की उत्पत्ति और विकास को लेकर तरह–तरह के दावे किये गये हैं। हम दूसरे सप्तक की भूमिका में अज्ञेय द्वारा अपने को 'प्रयोगवाद' की परिधि से बाहर सिद्ध करने की विकल कोशिश देख चुके हैं। 'तार सप्तक' के एक और कवि नेमिचंद्र जैन ने भी इस मुद्दे पर अपनी दो टूक राय रखी है। अज्ञेय के 'तार सप्तक' की भूमिका के कथन की "दूसरा मूल सिद्धांत यह था कि संग्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं – जो यह दावा नहीं करते कि काव्य सत्य उन्होंने पा लिया है केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं"[४३] पर नेमिचंद्र जैन का कहना है कि "संग्रहीत कवियों ने 'प्रयोग' का वह अर्थ नहीं लिया था जो बाद

मे विद्वान आलोचको ने उस पर थोप दिया। काव्याभिव्यक्ति के नये रूपो और शैलियो की खोज की ओर प्रवृत्त होने के बावजूद उन कवियो का आग्रह जिदगी के यथार्थ के अन्वेषण पर ही था।"[४४] नेमिचंद्र जैन आगे लिखते हैं कि उन कवियों की "छटपटाहट यह थी कि बदले हुये परिवेश मे अपने विशिष्ट जीवनानुभव को यथासभव ईमानदारी से पहचानकर उसे किसी घिसी–पिटी अभिव्यक्ति के बजाय एक अधिक प्रामणिक और मौलिक विशिष्ट अभिव्यक्ति द्वारा कैसे प्रस्तुत करे।"[४५] नेमिचद्र जैन के उपरोक्त कथनो की छानबीन करने पर हम पाते हैं कि 'तार सप्तक' के कवियो ने प्रयोग का अर्थ उस रूप मे भले न किया हो जिस रूप में आलोचको ने उसको आरोपित किया लेकिन उन कवियों ने उसे काव्यभिव्यक्ति के नये रूपों और शैलियों के खोज की ओर होने के बावजूद जिदगी के यथार्थ के अन्वेषण के रूप मे लिया हम यह मान सकते है कि प्रयोग का एक अर्थ नेमिचन्द्र जी कम से कम जिदगी के यथार्थ का अन्वेषण तो मानते ही हैं। नेमि जी लेबल मारू आलोचकों द्वारा 'प्रयोग' शब्द के ले उड़ने से अधिक उसके केवल वाह्य रूपगत प्रयोग अर्थ लगाने पर चिता जाहिर की है। नेमि जी इस बात को भी लेकर चितित हैं कि आलोचकों ने 'प्रयोग' से "बदलती हुयी चेतना और उसकी अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता की जाँच करने के बजाय कवियो के प्रयोगशील होने न होने को लेकर बाल की खाल"[४६] निकाला है। नेमि जी प्रयोग शब्द को बदलती हुयी चेतना और उसकी प्रामणिकता के रूप में लेते हैं। वे लिखते हैं "मैं अनुभव करता हूँ कि इस तथाकथित 'प्रयोगवाद' और 'प्रयोगवादी कविता' की जड़ों और उसके स्वरूप के सामाजिक और काव्यगत सामूहिक और व्यैक्तिक स्रोतों का अधिक कल्पनाशील अध्ययन आवश्यक है जो अलग से स्वतंत्र विवेचन का विषय है।"[४७] गिरिजा कुमार माथुर 'तार सप्तक' के दूसरे

सस्करण के पुनश्च मे प्रयोगशील आधुनिकता सबधी भ्रमो का निवारण करने की कोशिश करते हैं वे मानते है प्रयोगशीलता के साथ ही हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का सुभारभ हुआ। यहीं वे सकेत करते हैं कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन के काफी पहले १६४० तक कितने ही प्रयोग करके अपना मार्ग स्पष्ट कर चुके थे। वे लिखते है कि "जुलाई १६४१ ई. मे मैने अंग्रेजी मे एक लबा लेख लिखा था 'द थ्योरी ऑफ न्यू एक्सपेरिमेन्टलिज्म इन हिदी पोएट्री।"[४५] अपने वक्तव्य मे वहीं वे यह प्रश्न उठाते है कि "नव काव्य की धारा कब और कैसे आरम्भ हुयी उसके पीछे क्या कारण थे क्या वह कोई सगठित आदोलन था जिसका सूत्रपात किसी कवि विशेष ने किया था अथवा यह कि उसका सस्थापक कौन था। क्या 'तार सप्तक' के सभी कवि या उनमें से एक क्या इस धारा का समारभ 'तार सप्तक' से हुआ अथवा उसके पहले से ही, प्रयोगशीलता का लक्ष्य क्या था, क्या अन्वेषणों के पीछे कोई सैद्धांतिक आग्रह था, द्वितीय महायुद्ध तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि क्या थी, अर्थात् प्रयोगशील कवियों के सामाजिक बोध की कौन सी दिशा की ओर यह कि प्रयोगशील कविता का पारस्परिक सबंध क्या है।"[४६] इन प्रश्नो का उत्तर देते हुये छायावादी युग चेतना से सपूर्ण विच्छेद का बिन्दु वे १६४० ई से मानते हैं। गिरिजा कुमार माथुर मानते हैं कि आधुनिकता का प्रथम बोध १६४० के कुछ वर्ष पहले से ही कवियों में उदित हो चुका था।

इस नूतन मूल्य बोध का ग्रहण दो स्तरों पर हुआ वे मानते हैं पहला नवीन ज्ञान विधियो (मार्क्स और फ्रायड) के अध्ययनगत प्रभाव से युगीन समस्याओं के प्रति आकस्मिक जागरूकता के स्तर पर और दूसरे संक्रमण कालीन ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में मानते हैं। आधुनिक सवेदना के अनुरूप ऐसी नयी रचनाओं का आरम्भ वे

ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण हुआ मानते है। उनका कहना है कि 'तार सप्तक' किसी एक कवि या उसके सपादक द्वारा प्रस्तावित प्रयोगवादिता का समारभ नही था, क्योंकि नव काव्य उसके कई वर्ष पूर्व आरभ हो चुका था।"[५९] यही नहीं गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगशीलता के साथ हिंदी साहित्य मे आधुनिकता के समारंभ को प्रयोगवाद और नयी कविता मे देखने को असगत मानते है। वे आधुनिकता की प्रक्रिया का प्रथम उन्मेष १९४०–५२ ई तक तथा द्वितीय चरण १९५३ ई से मानते हैं। यहां ध्यान देना होगा गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगशीलता की जगह आधुनिकता पर जोर अधिक देते है। 'प्रयोगवाद' के स्थान पर उनके यहा 'आधुनिकता की प्रक्रिया' का प्रयोग मिलता है। उन्होने इस 'आधुनिकता की प्रक्रिया' के प्रथम उन्मेष के प्रधान तत्वों का उल्लेख किया है। जो निम्नवत हैं– "परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता, सामाजिक यथार्थ की चेतना, इतिहास का प्रथम बार तीव्र बोध, युद्धगत संक्रांति की मानवीय संवेदना, अन्तर्राष्ट्रीय उन्मुखता, नव रोमान, परिवर्तित मूल्यो की टकराहट" तथा दूसरे चरण मे निकटतम सत्यो की सवेदना, संक्रांति की विद्रक बनाओ का एहसास, व्यंग्य एव विपर्यय, मूल्यगत विकृति, आत्माहीनता, जीवन की विसगतियों (एब्सार्डिटी) की अभिव्यक्ति वैज्ञानिकता का उदय और मिश्र अनुभूतियों का अस्वाद प्रमुख स्वर हैं। हिन्दी कविता में 'प्रयोगवाद' की सस्थापना का श्रेय न चाहते हुये भी अज्ञेय को जाता है। पहले सप्तक से इसका बीजारोपण होता है, दूसरे सप्तक में यह पल्लवित और स्थापित होता है हालांकि पहले और दूसरे सप्तक के सभी कवि एक ही तरह के प्रयोगवादी नहीं हैं, पर मोटे तौर से 'तार सप्तक' के साथ दूसरे और तीसरे सप्तक के कवियों को प्रयोगवादी माना जाता है विशेष तौर से जिन कवियों को प्रयोगवादी माना जाता है, उनमें अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र

जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवरी सहाय, धर्मवीर भारती नरेश मेहता आदि कवि प्रमुख है।

इस बात को पहले हम कह चुके हैं कि 'प्रयोगवादी कविता' का आरम्भ छायावाद की उत्तर कालीन कविता मे आ गयी रूढिवादिता और 'प्रगतिवाद' की ठस 'ट्रेड यूनियन' टाईप की कविताओ के विरोध मे हुआ। इन बदली हुयी परिस्थितियो का आभास निराला, पत आदि की छायावादोत्तर कविताओ मे देखा जा सकता है। निराला की कुकुरमुत्ता, पत की दो लडके इस बात का एक अच्छा उदाहरण बनी, पत की दो लडके कविता जिसमे नये विषय के साथ भाषा और उपकरण भी नये थे, को देखा जा सकता है। हालाकि पंत की इस कविता में आगे चलकर छायावादी शब्द योजना का रग फिर झलक उठता है लेकिन निराला के यहां किये गये काव्यगत प्रयोग छायावाद की परिधि के एकदम बाहर है जिनमें स्फटिक शिला, वे किसान की नयी बहू की आखें, खुला आसमान, वनबेला इत्यादि कविताएं नवीन विषय छंद और उपमान आदि के सबंध मे हिन्दी कविता मे नया दिशा संकेत देती है।

निराला और पत के यहां जो 'प्रयोग' थे वे 'प्रयोगवाद' की परिसीमा के बाहर थे। यह जरूर है कि निराला, पंत इत्यादि की बदली हुयी कविताएं आगे के परिवर्तनों की सूचना दे रही थीं। लेकिन 'प्रयोगवाद' का समुचित विकास 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद ही हुआ। 'तार सप्तक' के प्रकाशन ने हिन्दी कविता को उसकी भावुकता से मुक्त करके उसमें बौद्धिकता का सचार किया। इस बौद्धिकता का आधार लेकर 'प्रयोगवाद' ने हिन्दी कविता का मार्ग प्रशस्त किया। कैसी विडम्बना है कि आज तक हिन्दी के बहुत सारे काव्या आंदोलनों का नामकरण और आरम्भ का समय तय नहीं किया जा सका है। छायावाद के नामकरण और उत्पत्ति संबंधी

विवाद को प्रमाण के स्वरूप मे रखा जा सकता है। छायावाद का आरम्भ कब हुआ नामक परिसवाद मे रामनरेश त्रिपाठी ने अपने को ही छायावाद का आरम्भकर्त्ता घोषित कर लिया है। वे लिखते हैं "अपने कवि श्री सुमित्रानंदन पत जी ने एक बार मुझे बताया था कि पथिक मे उनको छायावाद की पक्तिया मिली थीं . . क्योकि पथिक लिखते समय छायावाद की कोई कल्पना मेरे मस्तिष्क में नहीं थी और इसका श्रेय मुझे मिल सकता है या नहीं विचार किया जा सकता है।"[५१] पथिक की रचना १६१७–१८ ई मे हुयी थी। यही स्थिति 'प्रयोगवाद' के उत्पत्ति को लेकर भी है। वैसे तो 'प्रयोगवादी' काव्य प्रवृत्ति एतिहासिक दृष्टि से हिदी साहित्य में अपना स्थान बनाकर अपना काम पूरा कर चुकी है। अज्ञेय का यह कथन कि प्रयोग सभी कालों मे हुये हैं यह प्रयोगवाद की सर्वकालिकता की सूचना देने का प्रयास है। पिछले प्रयोगो का नये प्रयोगो से क्या सबंध हो सकता है इसके पीछे एक जागरूक दृष्टिकोण की जरूरत होती है अपने अतर्गत विरोधाभासों के चलते 'प्रयोगवाद' को आलोचको के कोपभाजन का पात्र बनना पडा। नद दुलारे वाजपेयी ने 'प्रयोगवाद' की आलोचना करते हुये लिखा–

"(१) प्रयोगवादी रचनाएं अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं।

(२) ये रचनाए वैचित्र्य प्रिय हैं, वृत्ति का सहज अभिनिवेश इनमें नहीं है।

(३) ये रचनाएं न तो वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार हैं और न ही सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करती हैं।

इस दृष्टि से यह कहना ठीक है कि 'प्रयोगवाद' किसी संतुलित वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक विचार दृष्टि के अभाव का शिकार था।"[५२] उसके मूल में अनुभव की ताजगी और अभिव्यक्ति का अनोखापन तो था पर वह व्यक्त सत्य तथा समाज सत्य

के दो पादो के बीच फंसकर रह गया। प्रयोगशीलता के मोह मे उलझकर ये कवि 'प्रगतिवादी' परंपरा का भी समुचित विकास नहीं कर पाये। काव्यधारा 'प्रयोगवाद' के दलदल मे फंसकर विकास की सही दिशा की ओर जाने से रूक गयी। कविता के अन्तर्गत प्रयोगो ने अत तक एक नयी रूढि को जन्म दिया। 'प्रयोग' शब्द के सतही और सकुचित मतव्य 'प्रयोगवाद' के पक्षधरो द्वारा निकाला गया। इस सदर्भ में 'प्रयोगवाद' के प्रणेता अज्ञेय और उनके समर्थक 'प्रयोगवादी' कवियों के संदर्भ में आचार्य नद दुलारे वाजपेयी की यह टिप्पणी देखी जा सकती है ''प्रयोगवादी साहित्य के साधारणत· उस व्यक्ति का बोध होता है जिसकी रचना में कोई तात्विक अनुभूति कोई स्वाभाविक क्रम विकास या कोई सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो। वास्तविक सृजन और क्रातदर्शिता के बदले सामान्य मनोरजन और शैली प्रसाधन ही उसकी विशेषता होती है। अधिकार और उत्तरदायित्व की अपेक्षा अनिश्चय और उद्देश्यहीनता की भावना ही यह उत्पन्न करता है। सृष्टा सदेशवाहक न होकर वह प्रणेता और प्रवक्ता मात्र होता है।''[33] नद दुलारे वाजपेयी के इन निष्कर्षों से पूर्णत सहमत न होते हुये भी यह तो मानना ही पडेगा कि जिस परम तत्व के शोध में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' के कवियो को लगा हुआ दिखाया था या जिन राहों के अन्वेष मे कवि लगे थे। न वह परम तत्व ही प्राप्त हुआ न राहों के अन्वेष के बाद कोई राह ही मिली। आखिर अत तक राहों का अन्वेष और परम तत्व की शोध का काम कब तक चलता। मुक्तिबोध, अज्ञेय आदि कुछ कवियों को छोड़कर अन्य कवि सही राह पर नहीं चल पाये। हालांकि इन कवियो में यथार्थ के प्रति गहरा आकर्षण था पर वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में अधिकांश कवि सजग और सचेत कलाकार होते हुये भी आत्मनिष्ठा और कुठा के गायक बनकर रह गये। ''यह निश्चित है कि प्रारम्भिक रूप में प्रयोगवादी

कविताए तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के विरूद्ध व्यक्ति द्वारा की गयी भावनात्मक प्रतिक्रियाए है। कितु . जिस बात पर वह सोचना चाहता है, जिस स्थिति पर सोचने के लिये उसे मजबूर होना पडता है उसके प्रति उसका दृष्टिकोण घनघोर व्यक्तिवादी स्थिति से लगाकर तो अविकसित मार्क्सवादी स्थिति तक फैला हुआ है। समाज उसका गला दबाता है। उसका अपना वर्ग भी उसकी आवाज को कुंठित करता है। समाज मे पुरानापन है, दकियानूसी है, जडता है और कुचलने की शक्ति है। व्यक्ति इसके विद्रोह करता है परन्तु विद्रोह का तरीका उसे नहीं मालूम इसलिये मात्र भावनात्मक विस्फोट करके वह रह जाता है।"[५४] बौद्धिक लक्ष्यानुगामी होने से उसकी इस धारणा का परिणाम यह हुआ कि कविता को वैचारिक गद्य का जामा पहनाया जाने लगा समाज के सामञ्जस्य के अभाव के फलस्वरूप तथा उसके विरूद्ध उसमे प्रखर बौद्धिक व्यक्तिवाद का विकास हुआ। निर्मम आलोचना करते हुये नद दुलारे वाजपेयी यह भूल जाते हैं कि 'प्रयोगवादी' कवियों के शिक्षित समाज की अभिरूचि छायावादी ही थी। उनके लिये पीडा का अर्थ रोमाटिक या आध्यात्मिक ही था। यह स्वाभाविक ही है कि अपनी छायावादी अभिरूचि के चलते नंद दुलारे वाजपेयी को भी प्रयोगवादी कविताए पसद न आयीं। प्रयोगवादी कविता की चरम स्थिति स्पवाद तक जाती है जो उसे नयी–नयी ऊँचाईयों तक पहुंचने से रोकती है। "चरम व्यक्तिवाद जो सामाजिक समस्याओं के प्रति व्यक्ति के मन में एक प्रकार की 'नॉन सीरयिस' गैर जिम्मेदारी और उदासीन रूख अख्तियार करवाता है जिसके फलस्वरूप कवि सामयिक समस्याओं से एकदम बचकर उन सबकी सर्वथा उपेक्षा करके केवल काव्य रूपों और शिल्पो में ही निरुद्देश्य भाव से अपने को उलझाये रखता है।"[५५]

'तार सप्तक' के कवि रुपाकार और शिल्प के प्रति वस्तु तत्व को उपेक्षित किये बिना आग्रहशील थे, किन्तु 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण तक यही स्थिति नहीं रही प्रयोगवादी रुपवाद का जादू प्रभाकर माचवे, अज्ञेय और गिरिजा कुमार माथुर के सिर चढकर बोलने लगा। इस जादू के केन्द्र में चरम व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति काम कर रही थी इस चरम व्यक्तिवादी प्रवृत्ति ने मध्यवर्गीय मानसिकता मे व्याप्त हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, अन्तर्मुखता, पलायन, कुठा, नैराश्य आदि के मार्मिक चित्रण तो किये। इस मार्मिक चित्रण मे परम तत्व के शोध के लिये कोई स्थान नहीं बचा था। इसीलिये बाद की प्रयोगवादी कविता 'राहों के अन्वेष' के विराट उद्देश्य से भटककर नकेनवाद, प्रपद्यवाद, अर्थ की लय, लघु मानव वाद, रुपवाद, क्षणवाद, अस्तित्ववाद, युयुत्सावाद, लिगवादल मोतवाद, जैसे वादो मे उलझ गयी। डॉ. कृष्ण लाल के शब्दों में "प्रयोग के दोहरे साधनों का विकास नहीं किया जा सका बल्कि केवल मुलम्मा छुटे मैले उपमानो के स्थान पर नयी अभिव्यक्ति सामग्री ही जुटाने का प्रयास किया जाता रहा।"[५६]

उपर्युक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि प्रयोगवाद जिन विराट उद्देश्यों को लेकर चला था। व्यापक दृष्टि और उत्तरदायित्व के अभाव मे अपने 'राहों के अन्वेष' में भटक गया। जहा पहले प्रयोग परम तत्व के शोध का साधन था वहीं बाद में यह स्वयं में साध्य बन गया। यहीं यह जान लेना चाहिये कि जिस तरह 'प्रयोगवाद' ने 'प्रगतिवाद' को अल्पायु किया था उसी तरह 'प्रयोगवाद' के बाद के काव्यांदोलनों ने कम अवधि दिया। यदि प्रगतिवादियों को १९३६ से १९४३ ई. तक का समय मिला था तो प्रयोगवादियो को १९४३ से १९५५ ई. तक का समय मिला। १९५४ में 'नई कविता' (सपादक जगदीश गुप्त) पत्रिका के प्रकाशन के बाद 'प्रयोगवाद' हिन्दी कविता का नेतृत्व प्रयोगवादियो के हाथ से निकलकर नयी कविता वालों के हाथ में चला गया।

(ग) विविधवाद और प्रयोगवाद

किसी भी काव्यादोलन का अपने पूर्वापर काव्य सिद्धातो या काव्यादोलनो से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सबध बनता ही है। सबध बनने की इस प्रक्रिया मे कभी पूर्ववर्ती काव्यधारा से टकराहट तो कभी नवीन काव्य धारा से संघर्ष होना स्वाभाविक है। 'प्रयोगवाद' मूलत छायावाद और 'प्रगतिवाद' तथा नयी कविता और प्रपद्यवाद के बीच मे अवस्थित है। उसका सबध छायावाद से प्रच्छन्न रूप से तथा प्रगतिवाद से प्रत्यक्ष रूप से बनता है ऐसा नहीं दरअसल 'प्रयोगवाद' उस संक्राति काल मे आया जब हिन्दी कविता मे बौद्धिक तबका अपने विचारों मे अभिरूचि में छायावादी ही था। इस छायावादी मानस से प्रगतिवादी कवि अपने तरीके से दो–चार हो रहे थे। वहीं 'प्रयोगवाद' की स्थापना के बाद हिन्दी मे जो काव्यांदोलन चले उन्होंने भी प्रयोगवादी काव्य अभिरुचियो से अपनी सहमति असहमति जताते हुये अपना मार्ग प्रशस्त किया। अपने पूर्ववर्ती काव्यांदोलनो से जरुरी नहीं कि बाद के काव्यादोलन पूरी तरह मुक्त हो, कुछ न कुंछ अवशेष या छाया परवर्ती काव्यादोलनो पर पूर्ववर्तियों की बची ही रहती है। छायावादी कवियो पर रीतिकालीन प्रभावो की वर्चा अक्सर होती रही है। यही नहीं कभी–कभी छायावादी कवि अपने बचाव मे स्वय ही कबीर, मीरा, रसखान, घनानद और बोधा का नाम लेकर अपने को उन्हीं की परंपरा में दिखाने का प्रयास करते थे। उनके इन प्रयासो के बावजूद हिन्दी जनता में यह भ्रम बना रहा कि छायावाद बगला और विशेषकर रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रभाव से आया। 'प्रगतिवाद' की उत्पत्ति मे उत्तर छायावादी कविता की छाया सहज ही दृष्टिगत होती है। कथ्य के एकदम बदल जाने के बाद भी प्रगतिवादी कवियों की भाषा अभिव्यंजना शैली पर छायावादी प्रभाव बना रहा। यह संभव भी नहीं है कि किसी भी काल का कवि अपने

पूर्ववती कवियो और उनकी कविताओ से एकदम निर्लिप्त होकर रचना कर सके। यह प्रभाव कवि पर कई पक्षो से न चाहते हुये भी पड सकता है। यह अकारण नहीं हैं कि सरस्वती सपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'जूही की कली' मे रीतिकाल का श्रृगारी प्रभाव लक्षित किया था। इसी तरह प्रयोगवादी कवियो मे अधिकांश पर छायावादी छद की परछाई पडती दिखती है। असल मे कविता मे ऐसी कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती जिससे यह निर्धारित किया जा सके कि यहा तक फलावाद की परिधि है। जहा एक काव्यादोलन शिथिल पड रहा होता है वहीं दूसरा काव्यादोलन जन्म ले रहा होता है। बहुधा एक का अवसान काल दूसरे का जन्म काल होता है। भक्तिकाल का अवसान रीतिकाव्य मे हुआ या कह सकते हे कि भक्ति काव्य की चरम परिणति रीतिकाव्य मे हुयी, यदि ऐसा न होता तो रीतिकालीन कवि यह कहने की हिम्मत न करता –

"अबके सुकवि रीझि हैं तो कविताई
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।"

या

"रूप क सार बखानो सिगार,
सिगार के सार किसोर किसोरी"

यह किसोर, किसोरी कृष्ण और राधा ही हैं। यदि भक्तिकाव्य, रीतिकाव्य मे पर्यवसित हुआ तो इसके मूल में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियां भी अपनी महत्व रखतीं हैं। यही स्थिति आधुनिक कविता के विविध वादों के बीच भी लक्षित की जा सकती है।

'प्रयोगवाद' किन रूपो में जन्मा, उसका अपने पूर्ववर्ती, छायावाद, प्रगतिवाद से

क्या नाता है उसके काव्य विवेक मे इन दोनो वादो का कैसा और कितना दखल रहा है यही इस विश्लेषण के मूल मे है। और 'प्रयोगवाद' का बाद की हिन्दी कविता के विभिन्न काव्य वादो से कैसा सबध रहा, विशेषकर नयी कविता और प्रपद्यवाद से। ऐसी स्थिति मे जबकि छायावाद और 'प्रगतिवाद' एक समाप्त हो रहे काव्यादोलन थे और 'नई कविता' व 'प्रपद्यवाद' का जन्म हो रहा था से 'प्रयोगवाद' ने अपना संतुलित सबध कैसे निभाया।

प्रयोगवाद और छायावाद

प्रयोगवाद की पृष्ठ भूमि मे छायावाद राख की तरह नहीं बल्कि उर्बरभूमि की तरह विद्यमान है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के कुछ बाद ही 'तार सप्तक' के कवियो पर प्रयोगवादी होने का आरोप लगने लगा था। 'तार सप्तक' में सकलित कुछ कवि प्रयोगवाद की तरफ गये कुछ प्रगतिवाद की तरफ। १६३६ मे प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। उसके कुछ पूर्व से हिन्दी में प्रगतिवाद का स्वर सुनाई पड़ने लगा था। निराला, पत इत्यादि अपने बदले हुए स्वर में प्रगतिवादी टोन की कविताए लिख रहे थे। सन् १६३६ मे ही युगांत का प्रकाशन हुआ जिसकी भूमिका में पंत ने यह सकेत दिया कि कविता में छायावादी कोमलकात पदावली अब आवश्यक नहीं। 'नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन' की घोषणा के साथ ही पंत सध्या के झुटपुट अधकार में मजदूरों को घर लौटते देखते हैं। 'तार सप्तक' मे छायावाद के ह्रासकाल सारे लक्षणो से एक सचेत संघर्ष मौजूद है। मुक्तिबोध की कविताओ में तथा राम विलास शर्मा के वक्तव्य मे और कविता दोनो में छायावादी काव्य संस्कार विद्यमान हैं। जो काव्य स्थितियां प्रयोगवादी कवि को छायावाद से असंतोष का कारण बनती हैं वही स्थितियां दोनों के बीच एक सूत्र बनाती है। माना जाता है कि छायावादी कविता और

जन सामान्य के बीच कोई सीधा सबध न था। साथ ही उसमे 'जीवन से सबधित' किसी निश्चित रचनात्मक सबधो की दृष्टिकोण का अभाव[५७] था। राम विलास शर्मा और गिरिजा कुमार माथुर को छोडकर 'तार सप्तक' के लगभग सभी कवि छायावाद से असतुष्ट हो चले थे। प्रभाकर माचवे को ''छायावाद हिस्टीरिया की भाति हिन्दी कविता का एक मानसिक रोग''[५८] की तरह दिखता था तो नेमिचद्र जैन को छायावाद मे ''शिशु सुलभ आत्मनिष्ठता''[५९] दिखलाई पडती थी। 'तार सप्तक' के इन प्रमुख प्रयोगवादी कवियो के छायावादी कविता के प्रति दृष्टिकोण से हम छायावाद और प्रयोग के अत सबध को रेखाकित कर सकते है। यहा यह ध्यान रखना होगा कि 'तार सप्तक' के कुछ कवि जिनमे राम विलास शर्मा प्रमुख हैं छायावाद के प्रति विशेष रूप से अलग तरह से आकर्षित है। राम विलास जी अपने नये 'छदों' को निराला इत्यादि के छद प्रयोग से सीखते हैं। इनके लिए छायावाद 'हिस्टीरिया' या 'शिशु सुलभ आत्मनिष्ठता' नहीं लिये था। इसका एक कारण राम विलास जी का छायावादी कवियो के विशेषकर निराला से व्यक्तिगत सबध भी हो सकता है। राम विलास जी अपने वक्तव्य मे लिखते है ''कई कविताए इस पक्ति को तोडकर वार्णिक मुक्तछद मे लिखी गयी हैं। एक दूसरे ढग का मुक्तछद मात्रिक है। दोनों ही प्रकार के मुक्तछद के आविष्कारक निराला है।''[६०] यहॉ यह ध्यान रखना होगा कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन तक राम विलास जी की 'निराला' पुस्तक प्रकाशन के लिए तैयार थी। गिरिजा कुमार माथुर अपनी कविता की संगीतात्मकता को लेकर 'छायावादी' कविता से खिन्न हैं। वे मानते है। व्यजन ध्वनियों से उत्पादित संगीत को मैं कविता मे सगीत नहीं मानता। प्रत्युत रीतिकालीन रुढ़ि समझता हूँ। छायावादी कवियों में इसी कारण मै कोई सगीत नहीं देखता, क्योंकि उनका संगीत व्यंजन ध्वनियों से

निर्मित है। और व्यजन ध्वनियो का सगीत वाह्य अस्थाई और मृत है। वह आकार सगीत है, शब्द की आत्मा का सगीत नहीं। शब्द की आत्मा स्वर ध्वनि है।"[६१] 'तार सप्तक' के कवियो से छायावाद के इस अतविरोधी सबध को हम उसकी अपनी पारस्परिकता मान सकते है। जहा पर लेनदेन और लगाव विलगाव इतना स्थूल नहीं हो सकता।

'तार सप्तक' के प्रकाशन (१९४३) तक छायावाद अपनी यात्रा के अंतिम बिदु की तरफ खिसक चुका था। इसकी कोमलता उसके अपने ही कवियो के लिए बोझ बन गयी थी। उसकी रेशमी मुलायनियत अब विपरीत परिस्थितियो मे बेकार हो गयी थी। अब "छायावाद वह रेशम था, जिससे युद्ध तथा सकट के दिनो में सिपाहियों की वर्दी नहीं बन सकती थी"[६२]। उसके प्राण शब्द जो अलग तरह की सकुमारता का वहन करते थे वे वायवीय और निष्प्राण हो चले थे। दिनकर की दृष्टि में "कोमलता की साधना में छायावाद ने कदाचित अति कर दी थी इसलिए इस काव्य मे स्वप्न, हिमकण, आसू, ओस विहग, बुद बुद, टलमल और चॅद्र नछत्र, क्षितिज एवं नीलिया जैसे कोमल और वाययीय शब्द भरे हुए है"[६३]। छायावाद के प्रति इस अंसतोष के बावजूद प्रयोगवादी कवि अपनी अभिव्यजना मे उससे पूरी तरह मुक्त नहीं थे। गिरिजा कुमार माथुर, नेमीचद्र जैन, मुक्तिबोध की कविताओ पर यह प्रभाव आराम से परिलक्षित किया जा सकता है। शब्दयोजना भी बहुत हद तक ही बदल पाई थी। बसत के फूल का रंग, गृह, द्वार नगर बन, मूल की रेशमी, रेशमी छाहे, छायावाद की परिधि से बाहर की नही है। रामविलास शर्मा 'फसल' क्रांति की फागुन में काट रहे थे पर अपनी कविता के लिए ऊर्जा छायावाद से ही ला और पा रहे थे।

'वह सहज विलबित मंथर गति, जिसको निहार

गजराज लाज से राह छोड दे एक बार'[६४] जैसी पक्तियां इसी संक्राति काल की 'फास' सी है। जहॉ प्रयोगवादी कवि अपने सभी आग्रह के बाद भी अपने पूर्व के काव्य आदोलन से मुक्त नहीं हो पा रहा था।

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद :

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की उत्पत्ति मे बहुत समयातराल नहीं था। १९३६ मे प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुई। उसके बाद यह विचार धारा बहुत तेजी से हिन्दी साहित्य पर छा सी गयी। ने १९४१ मे बनारस से निकलने वाले 'हंस' इसे बिल्कुल ही अपना लिया। १९३८ मे पत और नरेन्द्र शर्मा के 'रूपाभ' ने भी इसे बढावा दिया। हिन्दी की पहली कौन सी कविता प्रगतिवादी होगी इसमे किचित सदेह हो सकता है। पत की युगवाणी से पहले 'युगात' १९३६ मे आ चुका था। पर यह प्रगति की धार खडीबोली से पहले हिन्दी के परिदृश्य मे ब्रज काव्य के द्वारा आ चुका थी। सवत् १९९१ (१९३४ ई) में रामेश्वर करूण के दोहो की सतसई 'करूण सतसई' प्रकाशित हो चुकी थी। प जवाहर लाल नेहरू ने इसकी प्रशसा भी की थी। अनुभूति से रजित होने के कारण तथा रूसी साम्यवाद से प्रभावित होने के कारण वे "सपत्ति पर वैयक्तिक अधिकार हटाकर समाज के पुनर्निर्माण के पक्षपाती थे। तभी उन्होने लिखा—

जब लौं श्रम अरू उपज को, होत न साम्य विभाग
बुझे बुझाए किमि कहों, यह अशांति की आग।"[६५]

"किसानों के दयनीय दशा का वर्णन भी इन्होंने खूब किया है ......

करि श्रम तीसो दिन मरत भरत न भूखों पेट।
कहौ कहां ते लाइए पटवारी! तव भेट?

सुनियत कुकूर आप के दूध जलेबी खाहि।

हम सब कुष्क मजूर हा। कुकुरहु सम नाहिं।"[५५]

करूण सतसई के बाद युगात तथा युगवाणी का प्रकाशन हुआ था। युगवाणी ही नही प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना बैठक भी करूण सतसई के पश्चात ही है। इसलिए हम चाहे तो रामेश्वर को हिन्दी का पहला प्रगतिशील कवि कह सकते है। काव्य की कविता ब्रजभाषा मे प्रगतिशीलता का पक्ष ले रही थी। पर सुमित्रा नदन पत की कविता मे प्रगति के तत्व पूरी गभीरता से मौजूद है। हालाकि पंत की कविता मे सिद्धात कथन अधिक है कवित्व कम—

"साम्यवाद ने दिया जगत् को

सामूहिक जनतत्र महान

भव जीवन के दैन्य – दु ख से

किया मनुजता का परित्राण।"

इसके बाद सोहन लाल द्विवेदी की भैरवी, दिनकर की हुकार एव रेणुका, भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा अंचल, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन और त्रिलोचन और रागेय राघव अपनी कविताओं से इस प्रगतिकाव्य धारा को आगे बढाते हैं। १६४० तक प्रगतिवादी धारा पूरे उफान पर थी। उसके बाद की कविता नीरस, शुष्क, सिद्धान्तहीन एव भारत मे समय के प्रतिकूल पर रही थी।" प्रगतिवादियों में कई ऐसे कवि है जो प्रगति और प्रयोग के बीच झूलते रहते हैं। शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध इसी तरह के कवि हैं। जिनकी कविताओं में प्रगति और प्रयोग समान रूप से मिलता है।

छायावाद जिस तरह द्विवेदी युगीन कल्पना हीनता के विरोध में उठ खड़ा हुआ

था उसी तरह 'प्रगतिवाद' छायावाद की अतिकल्पना शीलता के विरोध में उपजा। सिर्फ कल्पनाशीलता ही नहीं, छायावाद की रहस्यातम्कता के विरोध मे भी प्रगतिवाद का स्वर मुखरित था। छायावादोत्तर काल मे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों लगभग साथ–साथ अपना आकार ग्रहण करते है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य प्रवृत्तियां थी जो इन दोनो से इतर अपना योगदान दे रही थी। यहा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि हिन्दी मे प्रगतिवाद किंचित कम समय तक गतिमान रहा किन्तु प्रगतिशील कविता निरतर प्रवाहित होती रही। इसलिए हिन्दी में "उल्लेख प्रगतिवाद युग का नहीं प्रगतिशील प्रवृत्ति का होना चाहिए।"[६७] इस प्रवृत्ति ने एक आदोलन का स्वरूप ले १९३० के बाद ग्रहण किया हो, इसकी झलक भारतेन्दु युग से स्पष्ट होने लगी थी। छायावादोत्तर कविता की विशेषताओ को निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

"(१) काव्य की भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाने का प्रयास"

(२) "ऐसी अनुभूतियो पर सबसे अधिक जोर जो सच्ची हैं, जो केवल क़वि तक ही सीमित न रहकर पाठको के मन को भी आदोलित कर सकती हैं।"

(३) "इस युग की सच्ची विशेषता काव्य में प्रसाद गुण की वृद्धि है।"[६८]

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनो ही छायावादोत्तर कविता की उपर्युक्त विशेषताओं से सीखते हैं। प्रगतिवादी कवियो ने छायावाद काव्य के सीमित हो चले काव्य संसार को विराट किया। उसने कविता में जन सामान्य को प्रवेश दिलाने का सफल प्रयास किया। वहीं प्रयोगवादियों ने उस जनसामान्य की मनोवृत्तियों, मनोभावों को गहराई से चित्रित करके उसे एक अलग रूप प्रदान किया। प्रयोगवादी कवियों ने प्रगतिवाद द्वारा शुरू किये गये कविता में जन सामान्य के प्रवेश को तो अपनाया पर उनकी

समस्याओ को अतिरजित भी किया। प्रयोगवाद की कविता इसीलिए शनै–२ फिर एक रूढि मे बदल गयी। जिस तरह प्रगतिवादी कविता ने छायावादी कल्पनाशीलता के स्थान पर यथार्थ को स्थापित किया उसी तरह प्रयोगवाद ने भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को प्रतिष्ठित किया। प्रयोगवाद का उदय ही छायावादी कल्पनाशीलता के विपरीत यथार्थवाद के आग्रह के कारण हुआ। "छायावादी कवि ने जहा चादनी का बडा भव्य चित्र उपस्थिति किया वही प्रयोगवादी कवि ने 'शिशिर की राका निशा' मे"[६९] चॉदनी की ही वचना घोषित कर दिया। प्रयोगवाद की वह बौद्धिकता आरोपित नहीं है। इस बौद्धिकता के परिणाम स्वरूप प्रयोगवादी कवि ने प्रतीको और उपमानों मे भी छायावादी किशोर भावुकता का बहिष्कार दिखाई पडता है।

प्रयोगवादी कवियो का प्रगतिवाद से उस तरह विरोध नहीं रहा। जिस तरह छायावाद से। इसी कारण प्रयोगवादियो ने अपनी स्थापना और रचना दोनों में छायावाद के बार–बार चुनौती दी। वहीं प्रगतिवाद के साथ कुछ काव्य यात्रा सम्भव हुई। प्रयोगवादी कवि अपनी यथार्थबाद की अतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण कविता के शब्द चयन वाक्य रचना तथा प्रतीक योजना को भी प्रकाशित पाता था। इस मामले मे उसकी बौद्धिकता उसका साथ देती है।

प्रयोगवाद और नयी कविता और प्रपद्यवाद

प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच का सबध बहुत उलझा हुआ है। कभी–कभी दोनो के सिद्धान्ताकारो के आपसी विभेद–स्थापना के अतिरिक्त अन्य भेद खोज पाना मुश्किल हो जाता है। कुछ लोग अपनी सुविधा के लिए 'नयी कविता' का प्रयोगवादी कविता कहना अधिक पसंद करते हैं। डॉ० देवराज मानते हैं कि "हम जानबूझकर अतिव्याप्ति को बचाने के लिए 'नयी' के बदले 'प्रयोगवादी' का विशेषण

प्रयोग कर रहे है'' ।[७०] अतिव्याप्ति की सहजता के लिए नयी कविता के बदले डॉ० देवराज का 'प्रयोगवादी' प्रयोग ऐसे ही नहीं इन दोनो के आतरिक समानता के कारण है। यही डॉ० नामवर सिह प्रपद्यवाद को प्रयोगवाद का एक दूसरा पहलू मानते हैं। नामवर सिह कहते है ''प्रयोगवाद का एक इसका पहलू बिहार के नलिन विलोचन, केशरी और नरेश के 'नकेनवादी' प्रपद्योद्वारा आया जो अपनी समझ से अज्ञेय का और प्रयोगवाद का विरोध करते हुए भी वस्तुत इसी की एक शाखा है।[७१] क्या नामवर सिह और डॉ० देवराज के उपर्युक्त कथन को 'नयी कविता' और 'प्रपद्यवाद के सिद्धान्तो तथा उनके अवदानो के मूल्याकन पर लागू किया जा सकता है। क्या नयी कविता के बदले 'प्रयोगवाद' का प्रयोग सिर्फ सुविधा के लिए है या किसी सुनियोजित सकल्पना के तहत। क्या प्रपद्यवाद को प्रयोगवाद का दूसरा पहलू मानना 'प्रपद्यवादियो' के चिन्तन तथा काव्य अवदान को सीमित करने का एक प्रयास नहीं।

प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी नयी कविता को आधुनिकता का तीसरा दौर और स्वाधीन भारत की पहली रचनात्मकता मानते है। उनका कहना है ''नयी कविता आधुनिकता का तीसरा दौर है जो स्मरण रहे स्वाधीन भारत की पहली रचनात्मकता है।''[७१क] यहा धातव्य है कि आधुनिकता का दूसरा दौर अज्ञेय के साथ आया हुआ मानते हैं। तार सप्तक की कविताओ का असर बाद की कविता पर होना ही था। नयी कविता भी उसके प्रभाव से बच नहीं सकती थी क्योंकि डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र के अनुसार ''तार सप्तक के कवियों ने ही अपने भीतर अनन्त अन्वेषण किये हैं'' ।[७१ख] नयी कविता के कवि यह अनुभव कर रहे थे कि दूसरा सप्तक के कवियों द्वारा जहाँ और जिस सीमा तक समस्त काव्य चेतना पहुँच चुकी थी, नयी कविता उससे आगे की ओर बढ चुकी थी।'' नयी कविता मूलत. १९५३ ई० में 'नये पत्ते; के प्रकाशन के साथ

विकसित हुई और जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के सपादन में प्रकाशित होने वाले सकलन नयी कविता (१९५४ ई) मे सर्वप्रथम अपने समस्त सभावित प्रतिमानो के साथ प्रकाश मे आयी।"[७२], इस काल की कविता का नामकरण 'नयी कविता' कई कारणो से पडा। नयी कविता के कवि मानते थे, कि उनकी काव्य चेतना 'दूसरा सप्तक' के कवियो की काव्य चेतना से काफी पृथक है। १९५४ मे प्रयोग की 'साहित्य सहयोग' नामक सहकारी सस्था ने 'नयी कविता' का प्रकाशन किया। नये पत्ते के आरम्भिक कुछ अको तथा 'आलोचना' मे नयी कविता की मूल स्थापना करते हुए यह चेष्टा की गयी कि "इस नयी काव्य धारा को उस वैयक्तिक यथार्थ और सामाजिक यथार्थ के साथ उन प्रतिमानो को लेकर विकसित किया जाये जो आज के काव्य बोध ा को वहन करते हुए सर्वथा नयी दृष्टि के साथ अवतरित हो रहे है। नयी कविता का मूल स्रोत आज के युग सत्य और युग यथार्थ में निहित है।"[७३] लक्ष्मीकात वर्मा नयी कविता की मूल स्थापना मे चार प्रमुख तत्वो का गिनाते हैं। "सर्वप्रथम यह कि नयी कविता का विश्वास आधुनिकता मे है। दूसरे नयी कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है, उसमे वर्जनाओ और कुण्ठाओ की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन है। तीसरे इस मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह विवेक के आधार पर अधिक न्यायोचित मानती है। और चौथा यह कि इन तीनो के साथ–साथ वह क्षण के दायित्व और नितात सम सामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है।[७४] लक्ष्मीकात वर्मा जी अपनी स्थापना की सफाई भी प्रस्तुत करते हैं — "आधुनिकता का अर्थ विकृतियो से न होकर' इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है जो विवेचना और विवेक के बल पर हमें प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवी दृष्टि यथार्थ की दृष्टि देती है।"[७५] नयी कविता की उपर्युक्त चारों प्रमुख तत्वो मे क्या उसका अपना है, कितनी

उसमे पिछले कविता आदोलनो से भिन्नता है इसको देखा जा सकता है। आधुनिकता मे विश्धारा, प्रयोगवाद के बौद्धिकता के बदले ही आया है भले ही सिद्धान्त रूप में उसमे वर्जनाओ और कुठाओ की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन हो पर इसकी रचनाओ मे प्रयोगवाद वाली सभी वर्जनाएँ, कुठाए यथावत बनी रहीं। उसकी स्थापना मे उद्धृत सभी विशेषताएँ गिनाने भर की है, वह दरअसल प्रयोगवाद का ही विस्तार है। हिन्दी कविता मे आधुनिकता का आरम्भ तार सप्तक से हो चला था। बाद मे प्रयोगवाद या नयी कविता के द्वारा सिर्फ उसका पल्लवन ही हुआ। यही नहीं नयी कविता की मुख्य पाच प्रवृत्तियॉ भी शाब्दिक रूप से भले ही भिन्नता रखती हो 'उनमे पूर्ववर्ती प्रयोगवाद से तात्विक भेद बहुत कम है। नयी कविता का यथार्थवादी अहवाद, व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वच्छदता, आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यग्यात्मक दृष्टि, रस और रोमाच के साथ आधुनिकता और समसामायिकता का निर्वाह, चित्रनयता और अनुशासित शिल्प की बाते बहुत मौलिक देन नहीं हैं। यही यह कह देना आवश्यक होगा कि नयी कविता मे लगभग वही लोग नेतृत्व कर रहे थे जो कहीं न कहीं अज्ञेय की प्रयोगवादी धारा या तार सप्तक से बिछुडे हुए थे। इनमें लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त प्रमुख भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। डॉ० जगदीश गुप्त ने नई कविता . नई अभिरूचि के जिस प्रश्न को खडा किया था वह भी कविता में एक तरह से नई राहों का अनवेष ही था। वे लिखते हैं कि "नई कविता उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नए कवि के समान है, अर्थात् जो उसके समान धर्मा है।"[७६]

यहॉं कवि की 'मानसिक अवस्था' और बौद्धिक चेतना का लक्ष्य 'प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादक थे, जिनकी अभिरूचि मुक्तिबोध के शब्दो में छायावादी ही थी

उन बौद्धिक के लिये अभी भी पीडा का अर्थ रोमैटिक या आध्यात्मिक ही था। या तो नई कविता के सिद्धान्तकारो का जनता से कोई सीधा लेन देन नहीं था जिससे जनता के बौद्धिकता व अभिरूचि का पता चल सकता या नई कविता के लोगों के सिद्धान्त भी किताबी थे। प्रयोगवादी कवियो के समस्या की तरह ही नई कविता का समाज भी उनके लिए दूरूह बना रहा फलितार्थ यह रहा कि "कविता को वैचारिक गद्य का जामा (पुन) पहचाना जाने लगा समाज से सामजस्य के अभाव के फलस्वरूप तथा उसके विरुद्ध उसमे प्रखर बौद्धिक व्यक्तिवाद का विकास हुआ।"[७७]

यहाँ लक्ष्मीकान्त वर्मा के प्रगतिवादी विरोधी नई कविता की मानसिकता को भी लक्षित किया जा सकता है। वे लिखते है –– "तथाकथित प्रगतिवाद समूह की सकीर्णता के साथ सम्बद्ध है। जिसमें न तो व्यक्ति का महत्व है न व्यापकता का। इसके विपरीत आज की नई कविता का नया प्रयोग व्यापक मानवता के प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा मे विश्वास रखता है –उसकी संवेदना की कोई सीमित परिधि नहीं"[७] यहाँ व्यापक मानवता का स्वरूप नितान्त अमूर्त एवम् असूझ बन कर आता हैं और प्रगतिवाद से इस पूर्वाग्रह ग्रस्त विद्रोह ने नई कविता रूढियो की मनोवैज्ञानिक रूप से पीछे धकेल दिया था। "उनके विद्रोह की जड में विवेक नहीं एक अस्वीकृति मूलक भावुकता है इस भावुकता से प्रेरित अतरदृष्टि को पराजय, विवशता, अपमान, अभिशाप बहुत अतिरजित रूप में दिखायी देते हैं, वे महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ दुर्लभ जीवन–मूल्य बन जाते हैं, मन एक ओर अपनी क्षुद्रता व हीनता के भाव से पीड़ित होता है दूसरी ओर अपने अनुपम विवेक का ऐसा प्रभामंडल रचता है, कि उसमें बड़े से बडे राजनीतिज्ञ और साहित्यकार भोर के तारों की तरह बुझे हुये से लगते हैं।"[७९] नई कविता वादियो के प्रति अज्ञेय के दृष्टिकोण को भी समझना यहाँ जरूरी है। यहाँ

हम अज्ञेय की 'नये कवि के प्रति'[६०] कविता को उनकी नई कविता के प्रति व्यक्त ध

ारणा के रूप मे देख सकते है। कविता की पक्तियॉ इस प्रकार हैं---

आ, तू आ,

हॉ, आ,

मेरे पैरो की छाप–छाप पर रखता पैर,

मिटाता उसे,

मुझे मुँह भर–भर गाली देता

आ, तू, आ।

.

पर आ तू,

सभी कहीं, सब चिन्ह रौंदना

अपने से आगे जाने वाले के

आ, तू आ,

रखता पैरो पर पैर

गालिया देता

ठोकर मार मिटाता अनगढ

(और अवांक्षित रखे गये।) इन

मर्यादा–चिन्हो को

आ, तू आ।

आ तू,

दर्पस्फीत जयी।

मेरी तो

तुझे पीठ ही दीखेगी क्या करूँ कि मै आगे हूँ

और देखना भी आगे की ओर।

पॉवडे

मैने नहीं बिछाये वे तो तभी, वहीं

बिछ सकते है, प्रशस्त हो मार्ग जहॉ पर।

आता जा तू,

कहता जा जो जी आवे

मैं चला नहीं था पथ पर,

पर मै चला इसी से

तुझकी बीहड मे भी ये पद चिन्ह मिले हैं,

काटो पर ये एकोन्मुख सकेत लहू के,

बालू की यह लिखत, मिटाने मे ही

जिसको फिर से तू लिख देगा।

आ तू, आ,

हॉ, आ,

मेरे पैरों की छाप–छाप पर रखता पैर,

जमी, युगनेता, पथ–प्रवर्तक,

आ, तू आ

ओ गतनानुगामी।

अज्ञेय की इस कविता से नये कवियो मे जैसी प्रतिक्रिया होनी थी हुयी। राजेन्द्र किशोर ने अपनी कविता 'वक्तव्य' मे इसके प्रत्युत्तर मे लिखा––

हमे प्रतीक्षा न थी तुम्हारे आवाहन की
हम आये आवाहन के पूर्व ही
नये भिन्न पथ से, जो तुम्हे अज्ञात था
हमने नही रक्खे चरण तुम्हारे पद–चिन्हो पर
हमने तुम्हे गाली नहीं दी,
तुम्हे खडित नहीं किया।

आह! यह हमारा दोष नहीं था
कि सूर्य की तरह अभिमानी होकर भी
तुम असमय अस्त हो गये!
हमें आहूत करने वाले पितर!
(कैसी विडम्बना है सम्बोधन की!)
सुनो, हम दुखित हैं![५१]

. . . .   . .

जगदीश गुप्त ने इस कविता की प्रतिक्रिया में लिखा कि "इस कविता में नये कवि के मात्र स्वाभिमान पर सदा–सदा के लिये सगर्व चोट की गयी है?"[५२] अज्ञेय ने "कविता मे, एक स्थल पर कहा है कि तू जो भी कह आक्रोश नहीं मुझको, परन्तु पथ प्रवर्तक के साथ गतानुगामी, युगनेता के साथ गाली देता, जयी के साथ दर्पस्फीत को मिला के देखने पर यह प्रकट हो जाता है कि कवि केवल व्यंग्य ही नहीं कर रहा

वरन् उसके पीछे वह आक्रोश भी निहित है?-३ अज्ञेय के नये कवियो के प्रति इस आक्रोश को उनके दिग्विजयी काव्य नेतृत्व से उपजे अह से जोड़कर देखा जा सकता है, अज्ञेय का यह दृष्टिकोण तार सप्तक के 'राहो के अन्वेष' के पायी गयी उपलब्धि ही है। उनके इस 'एप्रोच' को उन्हीं निराला के जिन्हें सन् ३७ में अज्ञेय ने —— ''ऐज से लिटरेरी फोर्स ऐट ऐनी रैट निराला इज आलरेडी डेड''५४ घोषित किया था कि कविता 'हिन्दी के सुमनो के प्रतिपत्र' मे देखी जा सकती है। किसी भी कवि का अपने बाद के कवि के प्रति कोई भी 'ऐप्रोच' उसके अर्जित का सूचक होता है। यहॉ पर इस पूरी कविता को उद्धृत करना मै जरूरी समझता हूॅ ——

''मै जीर्ण–साज बहु छिद्र आज,
तुम सुदल सुरग सुबास सुमन
मै हू केवल पदतल आसन,
तुम सहज विराजे महाराज!
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज में ज्यो अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।
तुम मध्यभाग के, महाभाग।
तरू के उर के गौरव प्रशस्त
मैं पढा जा चुका पत्र, न्यस्त
तुम अलि के नव रस–रगराग।
देखो, पर, क्या पाते तुम 'फल'

देगा जो भिन्न स्वाद रस भर,

कर पार तुम्हारा भी अन्तर

निकलेगा जो तरू का सम्बल।

फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज

या तुम बाध कर रंगा धागा,

फल के भी उर का, कटु, त्यागा,

मेरा आलोचक एक बीज।''[५५]

हिन्दी के समुनो के प्रति' अज्ञेय और निराला के इस 'एप्रोच' को छायावादी उदात्ता और प्रयोगवादी अनुदात्ता कहना ठीक नहीं होगा। बल्कि दोनों युगों के शलाका पुरूषो के 'लोकतात्रिक सस्कार' के रूप मे देखना उचित होगा। 'नयी कविता' और 'प्रयोगवाद' के बीच मे यही 'आ, तू आ' का भाव था, इसे अज्ञेय भी समझते थे और नयी कविता के कवि भी।

'प्रयोगवाद' और 'प्रपद्यवाद' के बीच मे जैसे भी संबंध थे उन्हें देख़ने के लिये हमे प्रपद्यवाद के 'प्रयोग द्वादश सूत्री' को देखना पड़ेगा। यहॉ ध्यान देना होगा कि प्रपद्यवाद मे कवियो की सख्या प्रयोगवाद और नयी कविता की तरह अनगिनत नहीं थी, इसमे कुल तीन ही कवि थे — नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश। इनके नामो के प्रथमाच्छरो को लेकर 'नकेन' की सज्ञा दी गयी थी और इनके बाद को 'प्रपद्यवाद' या 'नकेनवाद' माना गया। प्रो. केसरी कुमार ने तो नकेनवादियों को ही 'प्रयोगवाद' का आरम्भकर्त्ता माना है। इन्होने अपने सिद्धांत ''पस्पशा' में अपने काव्य संबधी अवधारणाओं को विधिवत रखा। इन लोगो की मान्यता थी कि 'प्रयोगशील अथवा प्रयोगप्रधान अथवा प्रयोगात्मक काव्य जिसके शील का निरूपण

अज्ञेय ने किया था। वह 'प्रयोगवाद' नहीं था, प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि को रखते हुए प्रो० केसरी कुमार ने कहा कि तार सप्तक के कवियो का 'प्रयोग' व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाना तथा भाषा मे अधिक सारगर्भित अर्थ भरकर अपनी सवेदनाओ को पाठक तक पहुँचाने के लिये है। उन्होंने सिद्धात में कविता को 'प्रयोग' का विषय भी माना और साधारणीकरण की समस्या को काव्य की मौलिक समस्या तथा कविता की भाषा की गूढता को अपनी बेबसी भी कहा।"[६६] प्रपद्यवादियों के अनुसार "तार सप्तक के कवियो का 'प्रयोग' अपने आप में इष्ट व साध्य नहीं है। वह साधन है।"[६७] प्रो० केसरी कुमार ने कहा कि "अगर हिन्दी के सुधी समीक्षक अज्ञेय जी की उपर्युक्त व्याख्या को प्रयोगवाद की व्याख्या न मान लेते तो प्रयोग दस सूत्री के प्रकाश की आवश्यकता न होती।"[६८]

बाद मे प्रपद्यवाद के इस दस सूत्र मे दो सूत्र और जोडे गये। इन दो सूतों को मिलाकर प्रयोग द्वाद्वश सूत्री निम्नवत् है—

"१ प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।

२ प्रयोगवाद सर्वतत्र–स्वतंत्र है, उसके लिये शास्त्र या दल–निर्धारित नियम अनुपयुक्त है।

३ प्रयोगवाद महान् पूर्ववर्तियों की परिपाटियो को भी निष्प्राण मानता है।

४ प्रयोगवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है।

५ प्रयोगवाद को मुक्त काव्य की नहीं, स्वच्छंद काव्य की स्थिति अभीष्ट है।

६. प्रयोगशील प्रयोग को साधान मानता है, प्रयोगवादी साध्य।

७ प्रयोगवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान है।

६ प्रयोगवादी प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छंद का स्वय निर्माता है।

१० प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसधान है।

११ प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य मे उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य मे अतर है।

१२ प्रपद्यवाद मानता है कि चीजो का एकमात्र सही नाम होता है।"[८९]

प्रपद्यवाद के इन बारह सूतों को हम प्रयोगवाद के सिद्धांतों को मिलाकर इनके साम्य–वैषम्य को देख सकते है, जहॉ प्रयोगवादियो के लिये प्रयोग एक साधान था वहॉ प्रपद्यवादियों के लिये प्रयोग साध्य था। अपनी काव्य भाषा के संबंध में प्रपद्यवादी मानते थे" काव्य की परपरागत भाषा मे थकान आ गई है और कविता के असख्य शब्द आज सहज अनिश्चित भावना मात्र रह गए हैं। मूल से उनका सबंध विच्छिन्न हो गया है। वस्तुत आसग (Association) और सगति (communication) से ही शब्द अर्थ ग्रहण करते है, किन्तु आसग के बदल जाने से उनके अर्थों मे सकोच अथवा विस्तार हो जाता है। अत प्रयोगवादी कवि आज अनेक घिसे–पिटे शब्दो का नवसस्कार कर रहा है। भाषा की थकान को दूर करने के लिये, उसमे नयी ताजगी भरने के लिये तथा उसे नए आवेगों एवं आसंगो से बनाने के लिए वह शब्दों की नई व्यवस्था, स्वर–विधान (codences) एव नई शब्द–संगति का निर्माण कर रहा है, विशेषणो का स्थानान्तरण तथा शब्द लोपी वाक्य–विन्यास (Elliptic Construction) प्रस्तुत कर रहा है।"[९०] यहॉ काव्यभाषा में किये गये इन परिवर्तनों के कारण प्रपद्यवादियों की कविताओं के आरम्भ में आयी सहजता और बोधगम्यता भी नहीं रही। प्रपद्यवाद के इन द्वादश सूत्रो में से कुछ ही तर्क संगत हैं प्रपद्यवादी वहां पर प्रयोगवादियों को थोड़ा भिन्न हुये हैं जहां वे मानते हैं कि प्रपद्यवाद 'प्रयोग' का दर्शन है। प्रो. केसरी कुमार के अनुसार "प्रयोग" के वाद से तात्पर्य यह है कि भाव और

भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्म प्रेषण, तत्व और रूप, एक या किसी मे या सभी मे प्रयोग को अनपेक्षित मानता है।''[५२] प्रपद्यवादी मानते है कि कविता शब्दो से लिखी जाती है ''इसका वाद इसके निकलता है कि कविता एक और भावो विचारो अथवा दर्शको से नहीं लिखी जाती, दूसरी ओर छदों, पिगल, अलंकार आदि से भी नहीं लिखी जाती।''[५३] प्रपद्यवाद एकृत (Escmplastic) गुण काव्य को काव्य का गुण मानता है, चूकि यह कभी उपलब्ध होता है ऐसा नहीं माना जा सकता।'' इसलिए प्रपद्यवाद प्रयोग की आवश्यकता को चिरतन मानता है। प्रपद्यवाद तरह–तरह से वस्तु सश्लेष को देखता है, और उसे नयी सगतियो मे देख सकने के कारण ही प्रपद्यवादी कवि अपने आधार के लिए नैतिक स्वीकृत पाता है। ''प्रपद्यवाद अनुभूति को शब्द से अलग नहीं मानते वह प्रत्येक अनुभव को एक सश्लेषण के रूप मे देखते है'' प्रपद्यवादियो ने कविता मे कुछ नये शब्द भी गढे एक तरह से यही नये शब्द प्रपद्यवाद की कुल उपलब्धि है। नकेन के सूत्र नौवहे सूत्र में कहा गया है कि प्रपद्यवादी प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अथवा छंद का स्वयं निर्माता है। इस की पुष्टि नये शब्द निर्माण से होती हैं। नलिन विलोचन शर्मा की 'धूलप' कविता पर इस दृष्टि से विचार किया जा सकता है—

> ''मुझे धूलप को
> बिना चश्मा लगाये देखना आता है।
> और ऐसी लाचारी।''[५४]

इन कविता पक्तियो में 'धूलप' शब्द पर विचार किया जा सकता है। इस धूलप में कई अलग–अलग शब्द अपनी संपूर्ण अर्थ गंभीरता के साथ जुड़े हुये हैं। यदि 'धूलप' में से यह निकाल दिया जाय तो धूल बचता है और यदि बीच से 'ल' को

निकाल दिया जाय तो धूप बचता है और यदि प्रारम्भ के 'धू' को निकाल दिया जाय तो 'लप' बचता है और बाद के 'लप' को निकाल दिया जाय 'धू' तो बचता है। इस धूलप मात्र मे इस तरह चार भिन्नार्थ देने वाले शब्द बनते है। जो धूल, धूप, लय (लचीला, लय) और धू के रूप मे सामने आते है। कुल मिलाकर ऐसी धूल जिसमे धूप और लचकता हुआ धुँआ वह भी शाम का सम्मिलित है। यहीं धूलप से गोधूलि का अर्थ भी निकलता दिखता है।

प्रपद्यवाद के सदर्भ में नामवर सिह का कथन कि प्रपद्यवाद का, प्रयोगवाद का एक दूसरा पहलू है की पुष्टि होती है। यहा यह ध्यान देना होगा कि प्रपद्यवादियो ने अपने आदोलन का सूत्रपाल १९३७–३८ ई. मे कर दिया था और वे अपने प्रयोग को साधन नहीं साध्य समझते थे। प्रो केसरी कुमार के इस कथन पर ध्यान देना होगा कि "हिन्दी कविता में 'प्रयोगवाद' का वास्तविक आरम्भ १९३६–३८ ई. मे लिखी गयी नलिन विलोचन शर्मा की कविताओ से होता है।"[६५] यहॉ ध्यातव्य कि 'प्रयोगवाद' सबधी सारी बहस नलिन विलोचन शर्मा की कविताओ के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद शुरू हुआ। नकेनवाद या प्रपद्यवाद, प्रयोगवादी काव्य धारा को उसकी ऐतिहासिक पीठिका को समझने मे मदद देता है। नई कविता की पूर्वपीठिका के रूप में भी इसका अपना महत्व है। नकेन से अलग इस धारा के कवियो में शिव चंद शर्मा, नर्मदेश्वर प्रसाद, रामनरेश पाठक, राजेन्द्र प्रसाद सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय है। विविध वादो के सदर्भ में 'प्रयोगवाद' के उपर्युक्त अध्ययनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'प्रयोगवाद' ने अपने सारे मोह भंग के बाद भी छायावाद से एक प्रगाढ़ संबंध बनाये रखा। प्रयोगवादियो ने छायावादी कवियों से उनकी कल्पनाशीलता से बचते हुऐय उनकी शब्द योजना में नये परिवर्तन किये। प्रगतिवाद से प्रयोगवाद ने उनकी

नीरस पदावली से बचने की शिक्षा ली तथा कविता को किसी भी साहित्येतर दबाव से मुक्त रखने की कोशिश की। यह कोशिश इसलिये भी जरूरी थी कि साहित्येतर बदाव के चलते कविता, कविता न होकर एक गैर ईमानदार 'पद्यवस्तु' बन जाती है। प्रयोगवाद और नई कविता तथा प्रपद्यवाद लगभग एक ही धारा के काव्यांदोलन सिद्ध होते है। जहाँ कविता के केन्द्र में अंततः प्रयोग की महत्ता सिद्ध होती है। जहां प्रयोगवादियो के लिये प्रयोग साधन है, वहीं प्रपद्यवादियो के लिये वह साध्य है जबकि नई कविता कवि कर्म को आत्मोपलब्धि एव भावनात्मक आत्म विस्तार का साधन तथा प्रयोगो को प्रगति का चिन्ह मानता है।"[६६]

संदर्भ

१ अज्ञेय, तार सप्तक की भूमिका – पृष्ठ १० छठा सस्करण।

२ मुक्तिबोध – तार सप्तक का वक्तव्य पृष्ठ २३ छठा सस्करण।

३ नेमिचद्र जैन, तार सप्तक का वक्तव्य पृष्ठ ५७, छठा सस्करण।

४ अज्ञेय, तार सप्तक की भूमिका पृष्ठ ११ छठा सस्करण।

५ शमशेर, राजकमल – नयी दिल्ली सस्करण १९९४, प्रतिनिधि कविताए।

६ मुक्तिबोध तार सप्तक पृष्ठ २१–२२ छठा सस्करण।

७ उपरोक्त।

८ नेमिचद्र जैन . पृष्ठ ५७ छठा सस्करण।

९. उपरोक्त

१० कवि गाता है, नेमिचद्र जैन पृष्ठ ५८ छठा सस्करण।

११ मृत्यु और कवि मुक्तिबोध पृष्ठ ३२ छठा संस्करण।

१२ नेमिचद्र जैन, पुनश्च पृष्ठ ७६ छठा सस्करण।

१३ नेमिचद्र जेन पुनश्च पृष्ठ ७६ छठा सस्करण।

१४ अज्ञेय, तार सप्तक, भूमिका पृष्ठ ११ छठा संस्करण।

१५ उपरोक्त।

१६. उपरोक्त।

१७. भारत भूषण अग्रवाल, अपने कवि से पृष्ठ ८६।

१८ अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ – २२२, छठा संस्करण

१९ उपरोक्त

२० तार सप्तक, प्रथम सस्करण की भूमिका, पृष्ठ – ६ छठा संस्करण से उद्धृत

२१ मुक्तिबोध, तार सप्तक, पृष्ठ २३, छठा सस्करण

२२ शिवदान सिह चौहान, आलोचना के मान, पृष्ठ – ८४

२३ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्वाद, पृष्ठ – ३०, संस्करण ६३

२४ उपरोक्त, पृष्ठ ३१

२५ शमशेर बहादुर सिह, दो आब, पृष्ठ ७४

२६. रामविलास शर्मा, नई कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ ३२

२७ डॉ० देवराज, आधुनिक समीक्षा, पृष्ठ – ६१, सन् १६५४

२८ उपरोक्त

२६ उपरोक्त, पृष्ठ ६२

३० नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृष्ठ ११०

३१ उपरोक्त, पृष्ठ ११०

३२ अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृष्ठ ६, संस्करण ६६

३३ उपरोक्त

३४ अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृष्ठ ६, संस्करण ६६।

३५ नद दुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य।

३६ केसरी कुमार, अवन्तिका, जनवरी '५४, पृष्ठ २५१

३७ गिरिजा कुमार माथुर, आलोचना जनवरी '५२।

३८ बालकृष्ण राव, नई कविता, अंक – ५,

३६ रामवचन राय, नई कविता, उद्‌भव और विकास पृष्ठ ११६, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना

४०. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, प्र० सं० पृष्ठ ८७, राजकमल

प्रकाशन।

४१ गिरिजाकुमार माथुर, अवन्तिका, जनवरी '५४ पृष्ठ २४४

४२ उपरोक्त

४३ नेमिचद्र जैन, बदलते परिप्रेक्ष्य पृष्ठ १६६

४४ उपरोक्त

४५ उपरोक्त

४६ उपरोक्त

४७ उपरोक्त, पृष्ठ, १६७

४८ गिरिजा कुमार माथुर, तार सप्तक, पृ० १६५, छठा सस्करण

४९ उपरोक्त, पृष्ठ १६३–६४

५० उपरोक्त, पृष्ठ १६५

५१ अवन्तिका, जनवरी '५४, पृष्ठ १८८

५२ नददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ७७

५३ उपरोक्त, पृ० ६९–७०

५४ मुक्तिबोध — रचनावली, भाग – ५, पृ० २८७, सस्करण १९९८

५५ नामवर सिंह — आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृ० १३०

५६. कृष्ण लाल, तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान, पृ० १६७

५७ दिनकर पृष्ठ ५९–५२, काव्य की भूमिका

५८ प्रभाकर माचवे – तार सप्तक पृ० ११२, सस्करण छठवां,

५९ नेमिचन्द्र जैन, बदलते परिप्रेक्ष्य पृ० १०७, प्रथम संस्करण

६० रामविलास शर्मा — तार सप्तक पृष्ठ १८९ छठा संस्करण।

६१ गिरिजा कुमार माथुर " पृष्ठ १४५ छठा सस्करण

६२ रामस्वरूप चतुर्वेदी, नवलेखन पृष्ठ १५ प्रथम

६३ दिनकर —— काव्य की भूमिका पृष्ठ ५६ प्रथम

६४ रामविलास शर्मा 'कवि' कविता पृष्ठ १६१ छठा सस्करण, तार सप्तक

६५ ब्रज किशोर चतुर्वेदी अवतिका जनवरी, १६५४ पृष्ठ २२०–२२१

६६ पूर्वोक्त

६७ दिनकर – काव्य की भूमिका पृ० ४७ सस्करण प्रथम

६८ उपरोक्त

६६ नामवर सिह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया पृष्ठ १२६

७०. डॉ० देवराज – नयी कविता – खण्ड एक सैद्धान्तिक पृष्ठ १३७ लोक भारती, २०००

७१ नामवर सिह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया,पृष्ठ ११० लोकभारती स.१६६०

७१क रामस्वरूप चतुर्वेदी, तार सप्तक से गद्यकविता, पृष्ठ ११।

७१ख डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र, अज्ञेय और तार सप्तक, पृष्ठ १३२।

७२ लक्ष्मीकात वर्मा–हिन्दी साहित्य कोश,पृष्ठ ३११, ज्ञानमण्डल सस्करण २०००

७३. उपरोक्त

७४ उपरोक्त

७५ उपरोक्त

७६ जगदीश गुप्त, नयी कविता अंक एक पृश्ठ ६ सन् १६५४

७७ मुक्तिबोध रचनावली –५, पृष्ठ २८७।

७८. लक्ष्मीकात वर्मा, नेयी कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ ३४ से उद्धृत

७६ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद पृष्ठ ५४, राजकमल

८० अज्ञेय, नयी कविता पृष्ठ ४६–५० सस्करण – २०००, खण्ड एक

८१ राजेन्द्र किशोर, नयी कविता, खण्ड एक पृष्ठ ५१, सस्करण २०००

८२ रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद पृष्ठ ३६, सस्करण १६६३

८३ जगदीश गुप्त, नयी कविता खण्ड एक पृष्ठ ५० सस्करण २०००

८४ राम विलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्वाद

८५ निराला राग विराग ६६–६७ सस्करण १६६६

८६ प्रो० केसरी कुमार, अवंतिका पृष्ठ २५१ जनवरी १६५४

८७. उपर्युक्त

८८ उपरोक्त पृष्ठ २५२

८६ डॉ० रामबचन राय नयी कविता उद्भव और विकास पृष्ठ १५० से।

६० प्रो० केसरी कुमार अंवतिका पृष्ठ २५२, जनवरी १६५६

६१ उपरोक्त

६२ उपरोक्त

६३ उपरोक्त

६४ नलिन विलोचन शर्मा, नकेन के प्रपद्य, मोतीलाल बनारसीदास पटना, प्रथम सस्करण पृष्ठ

६५. प्रो० केसरी कुमार —– अवन्तिका —– पृ० २६१ जनवरी '५४

६६. जगदीश गुप्त नयी कविता, स्वरूप और समस्याएँ, पृ० १६० प्रथम संस्करण

अध्याय - तीन

तार सप्तक के कवि और उनकी तार सप्तक की कविताओं के विविध पक्ष

हमे साहित्यिक माप–जोख दो दृष्टियो से करनी चाहिये। एक रूप की दृष्टि से, दूसरे, वस्तु–तत्व की दृष्टि से। वस्तु तत्व मे इतनी शक्ति होती है कि वह स्वय अपने रूप को लेकर आता है। अतएव, मुख्यत हमारे लिए वस्तु–तत्व प्रधान हो जाता है। प्रश्न यह है कि क्या प्रयोगवाद का आज तक का विकास ऐसा है कि जो हमारी जनता के मुख्य लक्ष्यों को अग्रस कर सके? अथवा, क्या उससे यह आशा हो सकती है? मेरा अपना मत यह है कि कि अभी तक प्रयोगवादी कवियो मे यह विशाल चेतना नहीं आ पायी है, जिसे हम महत्व देते है। कुछ कवि तो मात्र मानसिक प्रत्याघातों का चित्रण करके ही चुप रह जाते है। अन्यो ने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किये है। इनको देखकर यह आशा होती है कि आगे चलकर नये कवि अपने विशाल उत्तरदायित्वो का निर्वाह अधिक सफलता पूर्वक कर सकेगे।

– मुक्तिबोध

नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

(रचनावली, खण्ड ५, पृष्ठ २८८ सं दूसरा)

(क) विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण

१६४६ मे तारसप्तक पर लिखते हुए दिनकर ने यह संकेत दिया है कि ये (कविता) उन सभी कविताओ से भिन्न हैं जिन्हे देखने सुनने के हम अब तक आदी रहे है। इनका कवि जान बूझ कर काव्य के साधारण नियमो को भी भूल गया है। ----- इनकी पृष्ठ भूमि मे जो कुछ दिखता है वह निर्जन और विषण्ण है। ---- शायद आने वाली युग की कविता इनमे अपनी ट्रेनिग पा रही है"?[1] तारसप्तक एक परिवर्तन की सूचना लेकर आया था। इसे उस युग के एक समर्थ कवि दिनकर ने विशेष तौर पर रेखाकित किया था। उसी वर्ष तारसप्तक की पहली समीक्षा करते हुए शमशेर बहादुर सिह तारसप्तक को अत्यन्त नकारात्मक स्वर लिए हुए काव्य संकलन पाते है और इससे वे बहुत उत्साहित नहीं दिखते। शमशेर ने उस समीक्षा मे लिखा है प्रयोग ही तार सप्तक का नारा है, किन्तु इस दृष्टि से उसकी विशेषता कोई खात नही है। शमशेर ने इसके दो कारण बताये, एक तो यह कि तारसप्तक के प्रयोग अन्यत्र कई और कवियो के, इससे काफी पहले के संग्रहो मे मिल जाएगे, दूसरा यह कि ये अपने प्रयोगों मे बहुत कम सफल हुए है। अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में इन कवियो को काव्य के सत्य का अन्वेषक और परम् तत्व की खोज में लगा हुआ कहा था। शमशेर सकलित कवियो के संदर्भ में इस वक्तव्य को सही नहीं पाते। वे सकलन के अन्य कवियो के वक्तव्यों के आधार पर अज्ञेय की भूमिका 'इतिवृत्ति एव पुरावृत्ति' की बातो से अपनी असहमति दिखाते हैं। अलग अलग कवियों पर अलग–अलग टिप्पणी देते हुए कहा कि 'मुक्तिबोध की मान्यताएँ नकारात्मक हो गयी हैं।" अज्ञेय वर्जनाओं के संसार से घिरे हैं। प्रेम की स्मृतियों एवं प्रेम के मधुरतम क्षणों का चित्रण करने वाले गिरिजा कुमार माथुर मे भी उदासी है, थकावट है, सूनापन है, खोयी हुई परछाइयॉ हैं। प्रभाकर माचवे की ज्ञान की झोली में कुछ है तो 'संशय के

दो कण'। नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल अपने मानसिक सघर्षो से मुक्ति क लिए जनता की शक्तियो के साथ आना चाहते है और भावुकता मे उस ओर बढते भी है मगर अपनी अदरूनी उलझनो को सुलझा नहीं सके हैं। नतीजा यह है कि ये दोनो भी 'सशय, शैथिल्य और एकाकीपन' के विषाद से घिर जाते है। किन्तु अज्ञेय और रामविलास शर्मा की कविताओ के प्रयोग को कसौटी पर शमशेर सफल मानते है और रामविलास शर्मा की कविता को नया और अधिक स्वस्थ तथा परुष और मुक्त पाते है। कुल मिलाकर तार सप्तक की उपलब्धि शमशेर के लिए कोई खास नहीं।[९] यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि नया साहित्य के संपादक मण्डल में डॉ. राम विलास शर्मा तथा शमशेर दोनो थे। और यह समीक्षा वहीं छपी थी।

शमशेर की इस धारणा के विपरीत दिनकर ने तार सप्तक में अन्य कई नई बाते देखी। उनके अनुसार तार सप्तक 'एक प्रकार की वैयक्तिकता व्यंजित होती है। संग्रह की कविताओ मे 'डूबकर सोचने से दिनकर को ऐसा प्रतीत होता है। 'यह वैयक्तिकता' समाज के प्रति दायित्व ही नहीं प्रत्युत उसका आदर करने वाली है। इस वैयक्तिकता को भी दिनकर समाज सापेक्ष मानते हैं और लिखते हैं तार सप्तक के किसी भी कवि ने कोई भी ऐसा विषय नहीं उठाया है जिसका सीधा समाज से न हो।'' दिनकर ने यह भी महसूस किया कि इन कविताओ के भीतर से हिन्दी कविता कोई नया कदम उठा रही है और आने वाले युग की कविता अपनी ट्रेनिंग पा रही है।'' दिनकर तार सप्तक को दोषरहित नहीं पाते पर उपर्युक्त बातें उसके सकारात्मक पक्ष को पाठाकों के समक्ष रखा।

उपर्युक्त दो कवि समीक्षकों की राय देखने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि तार सप्तक पर एक प्रमुख आलोचक की राय देखी जाये। तार सप्तक की

आलोचना करते हुए डॉ० नामवर सिह ने लिखा है कि "एक लम्बी चिन्तन प्रक्रिया की परिणति के रूप में प्रकट होने के बावजूद तार सप्तक के अपने आकर्षण भी थे।"[३] नामवर सिह के अनुसार "पहला आकर्षण, प्रयास की सामूहिकता, दूसरा आकर्षण, कवियो द्वारा अपनी आस्था की घोषणा मे साहसिकता, तीसरा आकर्षण अपने आपको 'राहो का अन्वेषी स्वीकार.करने की विनयशीलता थी।"[४] डॉ० नामवर सिंह के लिए 'तार सप्तक' की आस्वस्त करने वाली सबसे कड़ी बात अन्वेषण की खोज से काव्य के क्षेत्र मे सृजन की सम्भावना थी।[५] डॉ० नामवर सिह तार सप्तक की सबसे बडी विशेषता सर्जनात्मक खुलेपन को मानते है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि डॉ० नामवर सिह तार सप्तक को एक लम्बी चिंतन प्रक्रिया की परिणति मानते है। जो आमूल गलत है। तार सप्तक न तो किसी एक व्यक्ति का सग्रह है और न हीं विचार के स्तर पर यह सग्रह किसी खास तरह के चिन्तन का परिणाम है। यह एक सहयोगी प्रयास का और प्रकाशन के लिए जहाँ तक संभव हुआ एक दूसरे की मदद की।

तार सप्तक सबधी कुछ आलोचना तथा समीक्षा देखने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि इसका सम्यक् मूल्याकन नहीं हो पाया। तार सप्तक मे कवि हैं। उनमें वक्तव्य हैं और संपादक की भूमिका है। संकलन के संपादक के रूप में अज्ञेय ने कवियो के वक्तव्यो से इतर उसकी एक भूमिका भी लिखी है। तार सप्तक का सही मूल्यांकन इन कवियों के वक्तव्य और उनकी कविताओं के आधार पर किया जाना चाहिए और संपादक के विचारों को भी मूल्यांकन के लिए कसौटी बनाया जाना चाहिए। तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने संकलित कवियों के संबंध में जो टिप्पणी की है वह सभी कवियों पर लागू होती है। इन कवियों के विचार अलग–अलग हैं फिर

भी यह 'टिप्पणी' उन्हे एक सूत्र मे पिरोती है। अज्ञेय लिखते हैं, ये सभी कवि 'कविता को प्रयोग का विषय तथा काव्य सत्य का अन्वेष करने वाले कवि हैं। ये कवि किसी 'मजिल पर' नहीं पहुँचे हैं, मजिल तक पहुँचने के लिए राहो के अन्वेषी हैं। जैसे हर धर्म दावा करता है कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए उसका रास्ता ही सही है वैसे ही ये कवि मंजिल को पाने के लिए अलग अलग रास्ते तलाश रहे हैं और इस अर्थ में उनमे भिन्नता है। और उनमे मतैक्य नहीं है। अज्ञेय कहते हैं कि सभी महत्वपूर्ण विषयो पर ये कवि अपनी स्वतत्र राय रखते हैं। तार सप्तक के प्रकाशन के बाद इन कवियो के संबध मे कही गयी अज्ञेय की इन बातो की व्यापक चर्चा हुई। इन कवियों के किसी मजिल पर न पहुँचने और राहों के अन्वेषी होने के कारण आचार्य नद दुलारे वाजपेयी यह आक्षेप करते हैं कि ये कवि राह बेराह किसी ओर चलते ही नहीं, उनमें 'मतैक्य' न होने पर बाजपेयी जी ने आक्षेप किया और विचारक वे ऐसे है कि सभी महत्वपूर्ण विषयो पर उनकी राय अलग–अलग है। विदग्ध आलोचक अज्ञेय की बातों को मनमानी शक्ले देते रहे हैं। और इस मनमाने के चलते वे अर्थ का अनर्थ निकालकर अपना अभीष्ट पूरा करते रहे हैं। जिस सगति काल में यह सप्तक मिलता था, उस समय कविता मे नयी अभिव्यक्ति के लिए प्रायः नये पुराने सभी खेमे के कवि कम रहे थे। राहों की खोज में उस समय के युवा ही नहीं स्थापित कवि ही लगे थे। जिस समय की कविताएँ तार सप्तक में संकलित हैं वहीं दौर कुकुरमुत्ता तथा ग्राम्या की कविताओं का भी है। भारत भूषण अग्रवाल ने आगे चलकर लिखा कि उन्हें अभी तक मार्ग की उपलब्धि नहीं हुई। किन्तु इससे न तो अज्ञेय की बात गलत सिद्ध होती है न उनमे राहों के अन्वेषी कोशिश का महत्व ही रहता है। भारत भूषण अग्रवाल ने इन कवियो की निश्चित मांग की प्राप्ति न होने के कारणों का संकेत करते हुए लिखा

कि हमारा जीवन इस तेजी से बदल रहा है कि उसकी समस्याएँ, इतनी शीघ्रता से परिवर्तित हो रही है कि काल का निश्चय आज संदेह का विषय बन जाता है। इसीलिए उस युग की सभी कविता निषेध की कविता है। यह भी पथ नहीं है, 'यह भी नही' आज का कवि इतना ही कह सकता है।[७] अगर ये कवि किसी मजिल पर 'पहुँचने का दावा नहीं मानते तो उनको गम्भीरता से लेना या उनकी खिल्ली उड़ाना सही नहीं प्रतीत होता। तार सप्तक ने युग के समक्ष नयी दिशाओं के द्वार खोले, कुछ नये प्रश्न उठाए, यही उस सकलन की विशेषता है।

सप्तक के कवियो की मत भिन्नता वस्तुत उनकी अपनी काव्य सर्जना की व्यक्तिगत दृष्टि है। लक्ष्मीकात वर्मा ने इनकी इस मतभिन्नता को कविता के लिए 'स्वरस्थ परम्परा' पाता है। इसके द्वारा 'मानव विशिष्टत और आत्म विश्वास के आयाम विकसित हो सकते थे।[८] यह सत्य है कि काव्य मे अपनी विशिष्टता बनाये बिना कोई कवि अपना काव्य व्यक्तित्व निर्मित नहीं कर सकता। लक्ष्मी कांत वर्मा ने सही कहा है कि उस काल के परम्परावादी कवियो से ये कई रूपो मे भिन्न थे। ये कवि परम्परा के सभी बधनों को तोडकर चलने का साहस अनुभव कर रहे थे। साथ ही साथ इनमें व्यक्तिगत तथ्यो और अनुभूतियो को कह सकने की सामर्थ्य थी।[९]

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने इन कवियो को उलझी हुई सम्वेदना का कवि कहकर इन्हे नकार दिया था। 'क्या कवियों की संवेदना उलझी हुई भी होती है।' डॉ० नगेन्द्र के हवाले से कहा जा सकता है कि 'उपचेतन की संवेदनाएँ प्रायः सभी उलझी हुई होती हैं।[१०] जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने में यदि इन कवियों की अनुभूतियॉ और संवेदनाऐं जटिल हो गयी हैं तो इससे इनका यह दावा सही ही ठहरता है कि ये राहो के अन्वेषी हैं।

तार सप्तक पर अतिरिक्त बौद्धिकता या गहन बुद्धिवादिता का भी आक्षेप लगाया गया है। इन कवियो मे मात्र बौद्धिकता ही नहीं है। जो बौद्धिकता है भी कवियो की मन स्थिति नहीं बल्कि तत्कालीन परिवेश ही इसका जिम्मेदार है। उस जमाने मे प्रचलित आदर्शवाद, छायावादी भावुकता, प्रगतिवादी इस विचार बोध से उनका काम नही चल रहा था। जिस कालखण्ड मे ये कवि कविता लिख रहे थे उसमे सदियो से प्रचलित आदर्श मे 'अराजकता' उत्पन्न हो गयी थी। नैतिक मूल्यों और सस्कारो मे आयी हुई 'सक्राति' और वैज्ञानिक युगीन बौद्धिकता से ये कवि प्रभावित थे।"[११] 'तारसप्तक' पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि इसमे संकलित कवि 'सामाजिक उत्तरदायित्व' का निर्वाह नहीं करते। तार सप्तक के कवियों के वक्तव्यो एव रचनाओ से यह बात दूर–दूर तक कोई सबध नहीं रखती, मुक्तिबोध, नेमिचद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा की कविताएँ, सामाजिक उत्तरदायित्वो, का निर्वाह एक तरह से करती हैं, जबकि गिरिजा कुमार माथुर और अज्ञेय की कविताएँ अपनी सामाजिक भूमिका अन्य तरह से तय करती हैं।

तार सप्तक के कवियों ने अपने वक्तव्यो में अपनी कविता और युगीन कविताई के बारे मे जो बातें कहीं है उससे न केवल कविता के बारे में उनकी चिन्ता व्यक्त होती है बल्कि उससे उनकी कविता की विशेषताएँ भी प्रकट होती हैं। उन वक्तव्यों से उस दौर के काव्य विवेक का भी पता मिलता है। भूमिका में अज्ञेय ने संग्रहीत कवियो की कविता के बारे में कहा है कि ये कविताएँ 'जड़ाऊ कविता' नहीं है। वह वैसी हो भी नहीं सकता। अर्थात् इन कविताओं में शब्दों की मीताकारी नहीं है।[१२] इनमें एक कच्चापन है इनकी अनुभूतियाँ पकी नहीं है शिल्प में भी सूखापन है। इन कवियों के सामने सब कुछ स्पष्ट नहीं है। अज्ञेय ने कहा कि उनमें सामने एक मार्ग,

यौन स्मृति, स्वप्न का दिवास्वप्न का है, पर उसे वह अपनाना नहीं चाहता' भाव बोध को व्यक्त करने का दूसरा मार्ग यथार्थ की अभिव्यक्ति है किन्तु यथार्थ–दर्शन केवल कुठा उत्पन्न करता है। इसलिये ये कवि उसे अपनाते नहीं क्यों कि वास्तव भी वीभत्सता की कसौटी पर' शिशिर की राका निशा' मे चांदनी का स्वरूप खोटा हो जाता है। इन कवियो की अनुभूतियॉ तीव्रतर है'। और वर्जनाएँ भी 'कठोरतर' हैं। जिससे 'आज के जीवन के दबाव, की अभिव्यजना का मार्ग उस नहीं दीखता।'[13] तीसरा सप्तक के यौन वर्जना बोध से वह 'सावन मेघ' जैसी कविता लिखता है तो वर्ग विशेष की चेतना के बोध से 'वर्ग भावना सरीक कविता रचता है।'

तार सप्तक के कवियो ने अपनी कविताओ के सदर्भ में जो वक्तव्य दिये हैं उनसे उनकी काव्य चेतना पर प्रकाश पडता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि 'मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूढने वाले बैचैन मन की अभिव्यक्ति हैं।' वे कविता को 'वैयक्तिक क्षेत्र' से निकालकर 'आज के वैविध्य मय उलझन से भरे रग भरे जीवन का चित्र बनाना चाहते है।'[14]

नेमिचद्र जैन की कविताओ को मानसिक पृष्ठभूमि मे संक्राति के रंगो की प्रमुखता है इनमे काव्य वस्तु मे 'सस्कार' और विवेक के 'कमसकस' की चेतना है। नेमिजी मानवता की मुक्ति के लिए 'काव्य को' एक बडा भारी अस्त्र और 'चेतना को पूर्ण रूप से सामाजिक बनाने पर जोर देते हैं।'[15]

भारत भूषण अग्रवाल की दृष्टि में कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच, के संबंध को स्वर देना और शुरू बनाने में सहायता करना होना चाहिए। कविता से वे मांग करते हैं कि उसे 'अपार्थिव अस्तित्वहीन फूलों की सेज न बनकर एक मूल्यवान अस्त्र की तरह हो'[16] प्रभाकर माचवे कविता मे

'छिछले रोमास' की अभिव्यक्ति नहीं चाहते, इसके स्थान पर 'यथार्थ', सामाजिक आशय से गर्भित छणो का मौलिक और प्रमाणित विम्वोचन व्यंग का तीक्ष्ण एव सरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि''[४९], की अभिव्यक्ति चाहते हैं।

तार सप्तक के कवियो की उपर्युक्त मान्यताए उनके कविता ससार का द्वार खोलती है। इन कवियो की कविताए, इनकी उपर्युक्त भावनाओं के अनुरूप ही है। यही तार सप्तक के कवियो और कविताओं की भी विशेषताए है। युग का यथार्थ, 'मानसिक सघर्ष', 'वर्गचेतना युक्त विद्रोह', 'यौन प्रतिकार', सक्रांतियुग का कशाकश, 'सशय', 'यथार्थ परक ग्राम चित्रण आदि इनकी कुछ विशेषताएं हैं। तार सप्तक मे कुछ ऐसी कविताए भी सकलित हुई हैं जिनसे प्रतीत होता है कि ये कवि, कविता की पूर्ववर्ती परम्परा से असतुष्ट है और उससे दो–दो हाथ कर लेने के लिए भी तत्पर है।''[५०] कई कविताए ऐसी है जिसमे बदले हुए सदर्भ मे कवि का नवीन व्यक्तित्व की तलाश है।''[५१] इस तरह की बाते 'अतर्दर्शन' व्यक्त्वि और खण्डहर हरतीस नूतन, अह, जनाह्वान, क्या आया, व्यर्थ उन्मुक्त, जीवन धारा, अधूरा गीत, वीसवीं सदी, कापालिक, 'हड्डियों का ताप' 'किसान कवि' और उसका द्वन्द्व जैसी कविताओं में देखी जा सकती है।

तार सप्तक में सकलित कविताओं की अन्य विशेषताओं मे परम्परा के बरक्स आधुनिकता बोध का प्रस्तुतीकरण अधूरागीत, रेडियम की छाया, गेहूँ की सोच, कापालिक विश्व शांति, कलियुग आदि कविताओ मे देखा जा सकता है। परिवेश के प्रति सजगकता और 'प्रमाणिक अनुभूति' जीवनधारा फूटा प्रभात, चूड़ी का टुकड़ा, जैसी कविताओ में मिलती हैं। विसंगति और विडम्बना – जनाह्वान, वर्गभावना

सटीक, पूजीवादी समाज के प्रति, कवि गाता है, देशोद्धारको से निम्न मध्यवर्ग, किसान कवि और उसका पुत्र जैसी कविताए उन दृष्टियो से परिगणनीय है।

तार सप्तक की रचनाए, नये सौन्दर्य बोध अथवा नवीन काव्य विवेक की माग करती है। पुराने काव्य विवेक वाले आलोचक या पाठक तार सप्तक की कविताओ मे असुन्दरता, भदेस, अश्लीलता आदि ही देख पाते है। बदला हुआ काव्य सौन्दर्य पुरानपथी आलोचको पाठको के कोप का भाजन होगा ही। किन्तु नवीन काव्य बोध वाले कुछ ऐसे आलोचक भी है जो इस नवीन सौन्दर्य बोध को पारिभाषिक करने का प्रयास भी करते है, इनमे एक नाम लक्ष्मीकात वर्मा का है, जो तार सप्तक की कविताओ के बारे में लिखते है 'सुन्दर उतना ही बडा सत्य है जितना असुदर' अतः विरायता अश्लील वहीं, असुदर भोडापन नहीं है? इस बदले हुए सौन्दर्य बोध की कसौटी पर तार सप्तक को परखा जाये तो उस पर लगने वाले सारे आरोप खोखले प्रमाणित होगे।

तार सप्तक की कविताओ की प्रधान प्रवृत्ति व्यक्ति और समाज से जुडे युग यथार्थ की अभिव्यक्ति है। तार सप्तक का व्यक्ति समाज का विशिष्ट व्यक्ति नहीं है। वह तो उस सक्रमण काल की परिस्थितियों से ग्रस्त व्यक्ति है। यह कह सकते हैं कि तार सप्तक की कविताओं मे अभिव्यक्त व्यक्ति में 'विशिष्ट मानव की अपेक्षा मानव विशिष्टता पर बल देने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है'[२१]। उस व्यक्ति में नितांत 'वैयक्तिकता, नहीं बल्कि संशय, कुंठा और अंतर्द्वन्द्व ग्रस्त एक सामाजिक व्यक्ति के दर्शन होते हैं जो कभी अंतर्मुखी दार्शनिकता में फसता हैं।'— 'अन्तर्दर्शन', 'व्यक्तित्व और खण्डहर', इस क्षण में, आगे गहन अंधेरा जैसी कविताएँ, — तो कभी बाहर किसी अत्याचारी को देखकर 'उद्धत विद्रोही' बन जाता है। और उसे ललकराने लगता है।

दृष्टव्य अज्ञेय की 'जनाह्वान' कविता। तार सप्तक का कवि, सक्रांतिकाल का – पीडित मानयता के युग का कवि है। इस कवि की 'आधी मुदी पलको मे 'मदिरा सा किसी छबि का मीठाभार' ही नहीं 'भूखे नरककाल अस्थि पजर' युक्त 'लाखो मजदूर' की परछाई भी है। नेमि चद्र जैन की कविता 'कवि गाता है' मे ऐसी भावनाए देखी जा सकती है। तार सप्तक का कवि 'व्यक्ति दु ख के पार से 'मारण–चिन्तन' भी करता है तो समाज मे व्याप्त शोषण उत्पीडन से 'पूजीवादी समाज के नाम की कामना भी करता है। मुक्तिबोध की कविता अतर्दर्शन और पूँजीवादी समाज के प्रति ये बाते स्पष्टत देखी ज। सकती है। तार सप्तक मे शहरी समाज के भी चित्र मिलते हैं। इसमे शहर का 'नोन तेल लकडी थी फिक्र' वाला आदमी भी है तो गॉव के समाज को जीवत करने वाला हलवाहा, खेतिहर लडकी, चीलम पीता हंसता भूमिजन और मेड बॉधता किसान भी है। प्रभाकर माचवे भी कवतिाओं में निम्न मध्यवर्ग, वसंतागग, और गेहूँ की सोव तथा राम विलास शर्मा की किसान कवि और उसका पुत्र में ये चित्र मिलते है। तार सप्तक में व्यक्त इन संदर्भों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तार सप्तक का यथार्थ व्यक्ति विशेष का यथार्थ न होकर नगर और गॉव के समाज का यथार्थ है। इस मे यदि शहरी मध्य और निम्न मध्यवर्ग चित्रित हुआ है तो गॉव के शोशितो का भी चित्रण है। सक्रांतिकाल की सारी चिन्ता, निराद्रा, क्रठा सशय आदि के साथ, तार सप्तक का कवि अपने सामाजिक दायित्व के प्रति भी चीतनशील है। वह परिस्थितियो के वात्याचक्रमे ही उलझ कर नहीं रह जाता बल्कि अपने सामाजिक परिवेश के दायित्व बोध का भी वह निर्वाह करता है। वह 'सबसे पहले समाज जीवी मानव प्राणी है' और समानधर्मा, का अर्थ उनके लिए 'कविधर्मा से पहले मानवाधर्मा है'।[12] तार सप्तक की कविताओं में इस बात के संकेत

भी मिलते है कि नई सामाजिक चेतना का उदय भी हो रहा है। ये कविताएं मानवी बौद्धिक कवियो के आकुल चित्त की देन है इनकी कविताओ मे सामाजिक अर्थव्यवस्था की समझ, जीवन की विषमता और जटिलता, मध्यवर्ग की मनोवृत्ति, किसान मजदूर, धनिक, पूँजीवादी साम्राज्यवाद, अन्तर्राष्ट्रीय चेतना, [23] जैसी बाते प्रकट होती है। ये बाते इन कवियो की व्यापक सामाजिक चेतना से युक्त भाव लोक का उद्घोष करती है।

तार सप्तक के कविताओ का सक्षिप्त विशलेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पहुचते हैं कि इन कविताओ मे तद्युगीन परिस्थितियो के अनुरूप भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवन संदर्भ मुखरित हो रहे थे। इस विश्लेषण में हमने इन जीवन सदर्भों को अलग–अलग कवियो की कविताओ में देखने का प्रयत्न किया है। किन्तु तार सप्तक की कविताए मात्र उन्हीं बातो के प्रस्तुत नहीं करती जिनको ऊपर रेखांकित किया गया है। तार सप्तक की कविताओ मे हर कवि की अपनी काव्यगत और शिल्पगत अलग–अलग विशेषताएं है। तार सप्तक मे ये विशेषताएं बीज से निकले अँखुये के रूप मे प्रस्फुटित हो रही हैं। नया भाव बोध अभिव्यक्त होने की लिए व्याकुल हो रहा है। तार सप्तक के इन बौद्धिक कवियो की प्रारम्भिक काव्य चेतना को समझने के लिए संग्रह की कविताओ के आधार पर इनका अलग–अलग विवेचन विश्लेषण आवश्यक है क्योकि यही वह प्रस्थान विन्दु है जहॉ से चलकर ये कवि अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त होते हैं। कवि मे इनकी सारी सभावनाए यहां विद्यमान हैं जो भावी कवि और कविता के विकास की पूर्व सूचना देती है। यहां तार सप्तक के सभी सातो कवियो क्रमशः मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, राम विलास शर्मा, अज्ञेय की कविताओं का विस्तृत विवेचन किया जा

रहा है।

मुक्तिबोध - (जन्म १९१७ - मृत्यु १९६४)

तार सप्तक के प्रथम कवि गजानन माधव मुक्तिबोध हैं। मुक्तिबोध का सम्पूर्ण जीवन सघर्ष और वेचैनी की अकथ कहानी है। मुक्तिबोध अत्यधिक सवेदनशील कवि है। वे स्वय कई कविता द्विविधा ग्रस्त मध्यवर्गीय नायको का जीवन जीते रहे। जिन प्रविधाओ और आशकाओं से वे आजीवन होते रहे, अपनी कविता मे उन्हीं स्थितियो की वे निर्मम आलोचना करते रहे। उनका गहन जीवन बोध, उन्हें व्यक्ति के सीमित दायरे मे समेटता है। किन्तु यह द्वविधा और द्वद्व व्यक्ति के समाज से न जुड पाने की तीव्र अनुभूति का द्वद्व है। तार सप्तक में सकलित कविताओ में उनका यही व्यक्तिवादी द्वद्व प्रधान स्वर मुखरीत है। मुक्तिबोध के काव्य नायक में भयानक मानसिक तनाव थमता रहता है। यह तनाव खुद कवि का है। मुक्तिबोध लगातार अपने इस निजी तनाव को सामाजिक आयाम में परिवर्तित करने मे लगे रहते हैं। असतोष और व्यापक अशाति की व्यथा और पीड़ा उनकी अपनी है। जिसे उन्होंने चेतनाहीत, चेतनाशील काव्य नायक की व्यथा के रूप मे व्यक्त किया है। मुक्तिबोध की कविता आधुनिक पूँजीवादी वर्ग विभाजित समाज की व्यथा कथा है। इनकी सकलित कविताओं में तद्‌युगीन विसंगतिया प्रमुखता से उभरती हैं। इस पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने की देखने अकुलाहट और मानव मात्र के प्रति सहानुभूति उनकी तार सप्तक की कविताओं का मूल स्वर है। इनकी यही काव्य चेतना, सप्तक में संकलित अन्य कवियों से उन्हें अलग करती है। वक्तव्य में अपनी कविताओं के बारे मे वे कहते हैं ये कविताएं अपना पथ ढूढने वाले वेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति मे छिपा है।

मुक्तिबोध की कविता मे जीवन और जगत के द्वद्व (आंतरिक और वाह्‌य दोनों) को सुलझाने की कवि प्रदत्त वेचैनी मिलती है। उनकी कविताओं मे वैयक्तिकता है किन्तु वे इस बात के पक्षधर है कि कवि को अपने अन्तर्मन तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, आज के वैविध्य भरे जीवन को यदि देखना है तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार उड़कर बाहर जाना ही होगा। बिना उसके इस विशाल जीवन समग्र की सीमा उसके तर प्रदेशो के भूखण्ड ऑखो के अदर ही रह जायेगे। कला का केन्द्र व्यक्ति है, उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता हैं। फिर युग सधि ाकाल मे कार्यकर्त्ता उत्पन्न होते है कलाकार नहीं इस धारणा को वास्तविकता के द्वारा गलत साबित करना पडेगा।[२५]

मुक्तिबोध की सृजन शीलता जीवन एव परिवेश की विषमता के तनाव से उत्पनन होती है। विषमता और तनाव की जैसी प्रखर और इमानदार अभिव्यक्ति मुक्तिबोध अपनी कविताओ मे करते हैं अब हिन्दी के किसी कवि द्वारा यह संभव नहीं सभी जीवनगत विषय परिस्थितियो के कारण जो परस्थितियां पैदा होती हैं उनसे मुक्तिबोध की कविताओ मे निराशा, धुरन, सदन, हाहाकार की अभिव्यक्ति होती है। ये सब उसके कवि व्यक्तित्व का अंग और उनके कार्य का अस्थायी काव्य बन गये हैं। इस आतरिक विषमता, द्वद्व और कस्मकश से गूढ, रहस्यमय, सुस्पष्ट, प्रवृत्तियों से अभिबोध का काव्य दुरूह हो गया है। इनकी अभिव्यक्ति के लिए जो प्रतीक वे चुनते है वे भी दुरुह हो गये है। इनकी कविताओं में एक गहन बौद्धिक अन्तर्दृष्टि मिलती है। उनकी कविताओं के लगातार गहन आत्मान्वेषण चलता रहता है। कहीं—कहीं निराशा के भाव भी मिलते हैं। किन्तु अपनी जिजीविषा से उन्हें झटककर निराशा द्वंद्व और घुटन से ये जूझते भी रहे हैं।

मुक्तिबोध की कविता जटिल अनुभूति और बौद्धिक सघनता की कविता है। इनकी कविता मे अनुभूतियॉ, विचारो मे ढलकर आती है। मुक्तिबोध का यथार्थ बोध इस अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के लिए 'फैन्टेसी' का रूप अपनाता है इस कारण उनके प्रयोग दुरूह और अनगढ से लगते है। इनकी कविताओ का शिल्प सज संवरा नही है और यही मुक्तिबोध के काव्य की शक्ति भी है। मुक्तिबोध की गहन अतदृष्टि और बौद्धिकता दोनो मिलकर हिन्दी काव्य जगत मे नवीन शिष्य नवीन छद विधान, नये प्रतीक, नये बिम्ब की अवधारणा प्रस्तुत करते है। मुक्तिबोध की कविता में विरोध के स्वर और बेदना की अनुभूति साथ–साथ आते हैं। अपनी कविताओं में आत्म चेतना को वे विश्व चेतना का रूप मे परिवर्तित कर जाते हैं। मुक्तिबोध की फैन्टेसी की दुनियां मे हार और रेशन भी हैं जिसका कविता काव्य नायक में होता है, उसकी स्थितिया ही पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करती हैं। उनकी कविताएं एकालाप अथवा मोनो लॉग की तरह है या दो व्यक्तियो के बात चीत के अंश की तरह। मुक्तिबोध के कविता की एक विशेषता नगरीयता है जो लम्बे काव्य के शिष्य के लिए अनिवार्य सा है, क्योकि स्थितियों की नारकीयता के बिना कविता आगे बढ़ ही नहीं सकती।

मुक्तिबोध की कविता की उपर्युक्त विशेषताओ को तार सप्तक की कविताओं में देखा जा सकता है। मुक्तिबोध का 'व्यक्ति' सामाजिक होने की प्रक्रिया के तनाव से गुजर रहा है, इसका एक चित्रण 'आत्मा के मित्र मेरे' कविता मे निम्न प्रकार से किया गया है–

'आत्मवत हो जाये

ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा,

वह हमारा मित्र है

माता–पिता पत्नी सुहृद पीछे रहे हैं छूट,

उन सब के अकेले अग्र मे जो चल रहा है

ज्वलत तारक सा,

वही तो आत्मा का मित्र है।

मेरे हृदय का चित्र है।

तार सप्तक के पहले सस्करण मे मुक्तिबोध की १७ कविताए संकलित हैं। इनके कविताओ के स्वर की विविधता मुक्ति बोध की कविताई के विविध आयामो को पाठको के समक्ष प्रस्तुत करती है। कवि कहीं प्रकृति मे भ्रमता है और उसके मोहक चित्र खीचता है तो कहीं अपनी विचार धारा से लैस पूँजीवादी समाज की आलोचना भी करता है और कहीं निराशा और अकेले पन के भाव को भी व्यक्त करता है, दृष्टव्य हैं तीनो के भावपूर्ण चित्र–

प्रकृति – (१) उस महाव्याकुल अनावृत्त ज्ञान लिप्सा

के क्षितिज पर

जो खिचा है स्वप्न,

श्रावण–साझ के वितरित होने पर

अमित, नीला, जामनी अतिलाल सुंदर

दिवासन की वरसात को सूर्यास्त का चुबन

कि ऐसा अद्वितीय

मधुरतम आश्चर्यमय।"

(– खोल आँखें)

विचारधारा (२) मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल, होकर एक

अपनी उष्णता से धोचले अविवेक,

तू है मरण, तू हैं रिक्त, तू हैं व्यर्थ

तेरा ध्वस केवल एक तेरा अर्थ।

(– पूँजीवादी समाज के प्रति)

अकेलापन (३) जबकि अदर खोखलापन कीट सा

है सतत घर कर रहा आराम से

क्यों न जीवन का वृहद् अश्वत्थ यह

डर चले तूफान के ही नाम से।

(– अशक्त)

तार सप्तक की कविताओ में भाव और शिल्प के स्तर पर मुक्तिबोध के ढेर सारे प्रयोग देखने को मिलते हैं तार सप्तक की कविताएँ, मुक्तिबोध के भावी कवि की सारी सभावनाएँ अपने अदर समेटे हुए है। शिल्प के विभिन्न प्रयोग –– कहीं मुक्तछद, नाटकीयता, तो कहीं संस्कृत– के वर्ण वृत्तो को तोड़कर घनाक्षरी से बनने वाली कवित्त और सवैया और उससे भी टूटकर मुक्तछंद, प्रयोग मुक्तिबोध के यहाँ मिलते हैं। मुक्तिबोध ने इन कविताओ मे छद का भी अभ्यास किया है। डॉ. नामवर सिह तार सप्तक मे मुक्तिबोध के पूरे कृतित्व मे भ्रम मुक्त कवि का संधान पाते हुए लिखते है, मुक्तिबोध के कृतित्व का महत्व इसी भ्रम मुक्ति में जैसाकि, बाद के पुनराविष्कार प्रमाणित हुआ। मुक्तिबोध भ्रम के इस लंबे दौर में सतत जाग्रत रहें।[२६]

नेमिचंद्र जैन (जन्म १६१८ --)

तार सप्तक मे सकलित दूसरे कवि नेमिचद्र जैन है। नेमिचद्र जैन की विचार धारा मार्क्सवादी है और साहित्य मे प्रगतिशील मूल्यो के पक्षधर हैं। तारसप्तक के अपने वक्तव्य मे नेमि जी की स्वीकारोक्ति है, 'साहित्य मे प्रगतिशीलता मे मेरा विश्वास है और उसके लिए एक सचेष्ट प्रयत्न का भी मै पक्षपाती हूँ। किन्तु कला की सच्ची प्रगतिशीलता, कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता मे है, व्यक्तिहीनता मे नहीं। आज जोर जोर से प्रगति की पुकार करने की आवश्यकता इसी से हो गयी है कि व्यक्तित्व आज खण्ड खण्ड हो चुका है। . कवि के प्रगतिशील होने की माग का अर्थ है कि वह जीवन की ओर अपने दृष्टिकोण को बदले। अपने ही सामाजिक दायित्व और स्थान को नहीं। बल्कि अपने काव्य के भी सामाजिक महत्व को समझे।[२७] तारसप्तक मे नेमिचंद्र जैन की पुनश्च के बाद की कविताओं को छोड़कर ११ कविताएँ संकलित हैं। जिनके बारे मे कवि का कहना है कि "अधिकांश (कविताओ) की मानसिक पृष्ठभूमि में संक्राति के रगो की प्रधानता है। संस्कार और विवेक की कशमकश की चेतना ही इन कविताओ का विषय है।"[२८] संकलित कविताओ से गुजरने के बाद 'कवि गाता है' को छोड़कर अन्य कविताओं मे सक्रातियुगीन मनःस्थिति का पता नहीं चलता। सक्रांतिकाल के बारे में कवि कहता है—

> सक्रांति काल का कलाकार कवि गाता है—
>
> देख चांदनी रातें कवि का नाच उठा उर,
>
> स्वप्न देश की परियों के गायन से उसका गूंज उठा स्वर,
>
> आधी मुंदी हुई पलकों में मदिरा सा

किस छवि का मीठा भार लिए,

वह बेसुध सा है, उनके नयनो में झूल रही

किस रूप परी की सघन याद,

उसके मन मे कितनी पीडा, उसके मन मे कितना विषाद।

(– कवि गाता है)

नेमिचद्र जैन की कविताओ का मूल स्वर मार्क्सवादी ही है पर इनके वक्तव्य और इनकी कविताओ मे गहरा अतर्विरोध है। सघर्ष की चेतना के बदले परिवेश से मुक्त होने मे असफल रहने के कारण विक्षोभ, पीडा, घुटन, और पलायन के स्वर इन कविताओ मे मुख्य हो गये हैं। कवि के मन मे कहीं न कहीं आशा और उल्लास भी है, जैसे निम्नाकित पक्तियो मे––

"सर्वहारा

प्रगति के उद्दाम नव उन्माद से बेचैन

आकुल एक धारा,

एक सतत प्रवाह –– ऐसी जिन्दगी की राह।

जीवन एक लम्बी राह।

(– जिन्दगी की राह)

नेमिजी की सकलित कविताओं मे रूमानियत का भी भाव मिलता है। 'अनजाने चुपचाप', 'इस क्षण', जैसी रचनाओ मे यही भाव मिलता है। इनमें प्रेम सौन्दर्य भी लिपटा हुआ चला आता है––

'तुम हो मुझसे दूर कहीं पर,

यौवन के प्रभात में विकसित,

डाली पर झुक–झुक

बलखाती,

सहज–सरल निज क्रीडा मे रत,

कुदकली सी।

(– अनजाने चुपचाप)

नेमिचद्र जैन की भाषा, भावो को व्यक्त करने मे अत्यन्त सक्षम है। मुक्त छद मे भी सायास लयात्मकता को इन्होंने बनाये रखा है। नये उपमान और नये प्रतीक भी कवि ने लिये है।

३. अग्रवाल भारत भूषण -- (जन्म १६१६ मृत्यु १६७५)

तारसप्तक मे भारत भूषण अग्रवाल की सोलह कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओ के बारे मे कवि ने अपने वक्तव्य मे कहा है, 'मुझे मेरी कविताओं में भावों का उत्थान (सब्लिमेशन) नहीं दिया, न उसने मेरे हृदय का परिष्कार किया। दूषित समाज ने मुझे जो असामाजिक कमजोरियाँ और गलित स्वार्थ दान में दिये, मेरी कविता ने उन्हीं की पीठ होगी, संसार को सच्चा मानकर उसमें कर्म करना, क्योकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है, इसलिए मैंने कविताएँ लिखकर मानों स्वप्न मे अपनी अभिलाषाएँ पूरी की और ससार को मिथ्या सिद्ध किया। कर्म से पलायन ही मेरी कविताओं का स्पदन रहा।"[२८] पलायन करते हुए भी कवि 'मानो स्वप्न में' जूझता रहा हो। कवि कहता है —

पर भय क्या है! — अब देर नहीं

हम अग्नि–शिखा प्रज्वलित करेंगे,

जिसके सम्मुख एक बार ही

गल–गल पिघल जायेगे सारे हिम के प्रस्तर।

एक बार फिर

जीवन पायेगा अपनी उन्मुक्त धार, निर्बन्ध प्रगति,

टूटेगे गति के पथ मे आये रूढिग्रस्त मानव के मन के भाव–बध

फिर से समस्त जग मे छायेगा नव प्रकाश,

नव–नवोल्लास, नव–गीत–छद।

(– जीवन धारा)

कवि के मन मे रूढियो के प्रति जहॉ आक्रोश है वहीं आस्था और विश्वास भी उसके स्वर मे बने हुए है। संहार के साथ वह सृजन का पृष्ठपोषण करता है। फलतः वह विश्व मे नये प्रकाश का, नये गीत छद की कामना, करता है। भारत भूषण अग्रवाल 'कला कला के लिए' की प्रवंचना के मूल कारण को समझ पाये हैं, साथ ही उसके उचित उपभोग को भी। अपने वक्तव्य मे भारत जी कहते हैं –– 'तब यह बात स्वीकार किये बिना मै नहीं रह सकता कि मेरी ये कविताऍ मेरे लिए केवल एक पलायन ही नही, वरन् एक स्वप्न लोक भी थीं, जहॉ मैंने अपनी समस्याओं से भाग कर केवल कारण ही नहीं ली, वरन् साथ ही असामाजिक नुकीले व्यक्तित्व द्वारा उत्पन्न अपनी असभव इच्छाओं की पूर्ति भी देखी ––

'जानता हूॅ . यही है वह पथ कि जिस पर मिल सकेगी मुक्ति

मेरी और सबकी मुक्ति ;

जानता हूॅ , यही है वह पथ कि जिस तक पहुँचने की

थी ह्रदय में चाह

जी मे था अतुल उत्साह।'' (– सीमाऍ : आत्म स्वीकृति)

भारत भूषण अग्रवाल कविता का उद्देश्य 'व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सबध को स्वर देना मानते है, उनकी मान्यता है कि कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय, समाज की शोषक सत्ता से उसे लडना पडेगा और 'तब कविता उसके हाथ में एक मूल्यावान अस्त्र की भाति होगी। आज की तरह, अपार्थिव अस्तित्व फूलो की सेज नहीं है –– इसीलिये भारत भूषण अग्रवाल कवि से उम्मीद करते है––

कवि! तोडो अपना शब्द–जाल, जो आज खोखला, शून्य हुआ,
यह है अपने पुरखों की वैभव भोगमयी कलुषित वाणी
मदमत्त विलासिनी! त्याग इसे! बनना है तुझको तो अगुआ
युग का, युग की भूखी, कमजोर हड्डियो का, जिनका पानी,
है उठा खौल, घिर रहा विश्व पर घटा टोप बदल बनकर।'

(– अपने कवि से – २)

ऐसी विषम सामाजिक स्थितियों में भी कवि 'सौदर्य का भूखा, कल्पना के लड्डू खाने वाला रंगीन कवि हुए बिना नहीं रह सकता[3]––

छलककर आयी न पलको पर विगत पहचान,
मुस्करा पाया न होठो पर प्रणय का गान;
ज्यों जुडी आंखे, मुड़ी तुम, चल पडा मै मूक––
इस मिलन से, और भी पीड़ित हुए ये प्राण!

(– मिलन)

भारत भूषण अग्रवाल की विचारधारा मानवतावादी है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को सरलता और स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति दी है। इनकी कविता में बिम्बों और

प्रतीको का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भारत भूषण अग्रवाल की सबसे बडी विशेषता आधुनिक भाव बोध के अनुसार तटस्थता और निस्सगता है।

४. प्रभाकर बलवंत माचवे (जन्म १६१७-१६६१)

प्रभाकर माचवे की कविताओ मे सौंदर्य चेतना, दार्शनिक का चिन्तन, और व्यगकार की तीक्ष्णता की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। प्रभाकर माचवे कहते हैं कवितागत रोमास और यथार्थ, एक ही कोण की दो भुजाएँ है। रोमास स्वस्थ मन का भावनात्मक सुख है, यथार्थ उसकी बुद्धिगत परिकल्पनाए[30] — निम्नलिखित पंक्तियों मे कवि की कोमल सौन्दर्य चेतना दर्शनीय है——

'मैं खीचं रहा हूँ आज अकाज लकीरें
आ भर दे उनमे रंग—रूप तू पी रे।
मैं तालहीन स्वर हीन छेड़ता बंशी,
तू भर दे उसमे नाद माधुरी धीरे।

(— मेघ—मल्लार)

तार सप्तक सकलन में संकलित कुछ कविताओ में कवि की दार्शनिकता भी अभिव्यक्ति हुई है —— जिसमे कवि सांसारिक गतिविधियों से तटस्थ होकर हॅसता है——

कापालिक हॅसता है।
पगले, तू क्यो उसमें फंसता है? रे दुनियादारी!
यह महीन मलमल की सारी
उसके नीचे नरम गुलाबी चोली से ये कसे हुए
पीनोन्नत स्तन, यह कुकुम अक्षत से चर्चित माथा, यह तन

किसी सुहागिन की अर्थी पर

बडी बडी चीलो के मानो तीक्ष्ण चक्षु से बसे हुए पर

जीवन यॉ सस्ता है,

मरना यहॉ नहीं डॅसता है,

कापालिक हॅसता है।[1]

(– कापालिक)

माचवे की कविताओ की व्यग की धार बडी पैनी है। माचवे ने अपनी एक कविता मे राजनेताओ पर बडा गहरा व्यंग किया है। यह व्यग कालातीत है। माचवे इस कविता मे–'देशोद्वार' की बात करने वाले राजनेताओ के जीवन के अन्तर्विरोध को बहुत स्पष्ट तरीके से देख रहे थे––

'मृदुल नींद नीड की गोद मे

और परो की सेज नरम,

बाहर झुलसी हवा बह रही,

रह रहकर लू तेज–गरम

बाहर अर्धनग्न पीडा,

भीतर क्रीडा लबरेज हरम,

करूणा के आगन मे, नेता,

दे थोड़ी सी भेज शरम्।'

(– देशोद्धारकों से)

माचवे मानो ४२–४३ में ही शताब्दी के अंत के नेताओं की परम परिणति देख रहे थे। शायद वे उस जमाने की गांधीवादी कांग्रेसियों की इस अंतर्विरोधी चाल को

व्यक्त कर रहे थे। ध्यान देने की बात है, 'देश के उद्वारक नेता तो यहाँ है, किन्तु जनता समूचे परिदृश्य से परे है। ये देशोद्वारक देश का उद्धार करने के स्थान पर अपने उद्धार मे लगे हुए है। व्यग की तेजर धार जितना सन् ४०–४१ के नेताओ पर लागू होती है उतनी ही आज के नेताओ पर भी।

प्रभाकर माचवे की तारसप्तक की कविताओ मे विविधता बहुआयामी है। जीवन के छोट–छोटे क्षणो से लेकर अतरर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे उन कविताओ मे मौजूद है। इस विविधता मे राजनीति की कहीं न कहीं अपना स्थान खोज लेती है। यह राजनीति उन्हीं अर्थो मे नहीं है जिन अर्थो मे 'प्रगतिशील' धारा के कवियों की राजनीति चलती थी। यहाँ वर्गीय चेतना अधी और पूर्वाग्रह मुक्त न होकर अपनी चमक लिए हुए है। कवि प्रश्नाकुल है। वह जितना बाहरी समाज को लेकर व्यग्र है उससे कहीं अधिक अपनी कविता अपने अनुभव की विश्वसनीयता को लेकर है। वह पूछता है कविता क्या है?

कविता क्या है? कहते है जीवन का दर्शन है – आलोचन,
(वह कूडा जो ढंक देता है बचे–खुचे पत्रो मे के स्थल)
कविता क्या है? स्वप्न श्वास है उन्मन कोमल,
(जो न समझ में आता कवि के भी ऐसा है वह मूरखपन)
कविता क्या है? आदिम कवि का दृग–झारी से बरसा वारी
(वे पक्तियाँ जोकि गद्य हैं कहला सकती नहीं विचारी)।

माचवे पूर्ववर्ती काव्यधाराओ से संतुष्ट नहीं हैं। वे छायावाद और प्रगतिवाद पर अनेक तरह के आरोप लगाते हैं। साथ ही उस काल की राष्ट्रीय काव्यधारा से भी वे असतुष्ट हैं। माचवे का यह असंतोष एक तरह से इन तीनों धाराओं की कविता की

कमजोरी को नकारती है। और इस नकार के साथ ही नये भाव बोध और नयी विषय वस्तु, नयी शैली के द्वारा हिन्दी कविता मे वे कुछ नया करने के पक्षधर हैं, वे कहते है, हिन्दी कविता' मे एक समय की बहुत लोकप्रिय बनी हुई राष्ट्रीयतावाद की लहर अब धीमे धीमे मद पडती जा रही है, क्योकि छायावाद और प्रगतिवाद दोनो के समन्वय (?) जन्य दोष उसमे इकट्ठे आ गये हैं क्योकि वे प्रगति को छाया समझते है और छाया को ही प्रगति। इस प्रकार वस्तु कि दृष्टि से हिन्दी कविता में अभी विषयो की विविधता, व्यग का तीक्षण और सुरूचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के संबध मे अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन जीवन के निकटतम जाकर ग्राम गीत, लोकगाथा और बाजारू कहलाई जाकर हेय मानी जाने वाली बहुत सशक्त और मुहावरे दार जबान से नये नये शब्द रूपो और कल्पना चित्रो को ग्रहण करना और प्रयोगशील अभिव्यजन के प्रति औदार्य आना चाहिये।

माचवे उपर्युक्त उद्धरण में विषय वस्तु और काव्य भाषा की नवीनता पर जोर देते है। एक ओर तो वे विषय वस्तु को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त करना चाहते हैं, दूसरी ओर जनप्रचलित लोकगीत लोकगाथा की शैली और जनता की जुबान में ही काव्य रचना चाहते है। तथा दूसरे कवियो से भी इतनी ही उन्मुक्त दृष्टि की अपेक्षा करते हैं। प्रभाकर माचवे अपनी स्थापनाओ का परिपालन तारसप्तक की कविताओ मे करते दिखते हैं। विषय वस्तु की विविधता तथा भाषा शिल्प के स्तर पर उन्होने उपर्युक्त स्थापनाओं को लागू भी किया है। माचवे कविता की भाषा और अभिव्यजना कौशल पर विशेष जोर देते हैं तथा कवियों से आम जनता की भाषा में कविताई का आग्रह करते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र की शब्द शक्ति में से माचवे लक्षणा शक्ति की अपेक्षा, व्यंजना शक्ति को अपनाना अधिक श्रेयष्कर समझते हैं।

नये छदो रचना के क्षेत्र मे भी माचवे नवीन प्रयोगो के आग्रही हैं। दूसरी भाषाओं के छदो का भी अनुकरण करना चाहते है और इसके लिए निराला के मुक्त अतुकात, अक्षर मात्रिक छद पर आधारित तथ्यात्मक पद्य रचना पद्धति अपनाना चाहते हैं। माचवे कविता को सगीत बनाना चाहते है। वे कविता मे भावों के उतार चढाव के अनुकूल गति के श्लथ द्रुत होने की सभावना पर भी विचार करते हैं। गद्यात्मकता की जगह गेयता, अनुप्रास योजना, शब्द निष्ठा की जगह अर्थ निष्ठा और मस्नवी पवाडे के ढग पर काव्य रचना चाहते है। ये इस बात को समझते हैं कि काव्य सिद्धान्त सम्बधी जितनी स्थापनाएँ इन्होने की हैं उन सबपर शब्दश अमल करना बहुत कठिन है। वे कहते है 'मेरा कदापि यह आशय नहीं है कि मेरी रचनाएँ जो इस सग्रह में हैं, वे सब मेरे इस 'फतवे' की सब शर्तो को पूरी करने वाली, या उन काव्य दोषों से पूर्णतः अलिप्त है।'[३२]

५. गिरिजा कुमार माथुर (जन्म १९१८ - मृत्यु १९९४)

गिरिजा कुमार माथुर छायावादी रूमानी भाव बोध के कवि अधिक हैं। उनकी कविताओ मे प्रेम और सौन्दर्य के विषद चित्र मिलते हैं। तार सप्तक के पूर्व इनके 'मदार' नामक सग्रह प्रकाशित हो चुका था। उन कविताओं पर भी छायावादी भावुकता और सौन्दर्यबोध की रोमानी कल्पनाशीलता का यथेष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यह रोमानी कल्पना और सौन्दर्य बोध तार सप्तक तक आते आते छूटने लगा था। रोमानी कल्पना तो वही रह गयी पर नयी विषय वस्तु, अनुभूतियों की जगह बौद्धिकता झलक मारने लगी थी। प्रेम सौन्दर्य के इस भावपूर्ण चित्रण में भी इस दृष्टि से नवीनता की पहचान की जा सकती है—

आज अचानक सूनी सी संध्या में,

जब मैं यो ही मैले कपडे देख रहा था,

किसी काम मे जी बहलाने

एक सिल्क के कुर्ते के सिल्वर मे लिपटा,

गिरा रेशमी चूडी का छोटा सा टुकडा

उन गोरी कलाइयो मे, जो तुम पहिने थी

रग भरी उस मिलन रात मे।

(– चूडी का टुकडा)

गिरिजा कुमार माथुर अपनी कविताओ मे एक फोटोग्राफर की तरह चित्र खीचते है और चित्रकारो की तरह उनमे रगो का सयोजन करते हैं। ये चित्र अपनी पूरी भव्यता मे आकर्षित करे इसके लिए वे पूरा लैण्ड स्केप भी देते हैं। इस प्रक्रिया के लिए कवि काव्य टेकनीक को महत्वपूर्ण मानता है। माथुर लिखते हैं 'विषय की मौलिकता का पक्ष पाती होते हुए भी, मेरा विश्वास है कि 'टेकनीक' के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।[34] यहाँ दृष्टव्य है –टेकनीक युक्त –स्टिल चित्र—

'सेमल की गर्मीली हल्की रूई समान

जाड़ो की धूप खिली नीले आसमान मे

झाडी झुरमुटों से उठे लम्बे 'मैदान में'

(– कुतुब के खण्डहर)

गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में छायावादी प्रवृत्तियाँ अपने पतनशील रूप में विद्यमान हैं। उनकी "रचनाएँ नवीन होती हुई भी गेयता की दृष्टि से प्राचीनता का कुछ सश्रय लिये हुए हैं। अत्याधुनिक यथार्थवादी की रचनाओं में प्रायः गेयता का अभाव होता है। इसलिए काव्यांश की कमी होती है। संसार में सभी जगह गीत गाये

जाते है। उनकी परिपाटी अधिकाशत प्राचीन है----------- गिरिजा कुमार की रचनाओ मे जैसी सादगी है वैसा ही भाव, जैसा भाव है वैसी ही गेयता।"[३५] तार सप्तक सग्रह मे सकलित कविताओ मे गिरिजाकुमार माथुर अपने को उपर्युक्त भाव भूमि से अलगाते प्रतीत होते है। पहले जहॉ उनमे गीतात्मक अभिव्यक्तियॉ होती थीं, तार सप्तक मे आकर यह प्रवृत्ति कमतर होती गयी है और बदले हुए रूप में कविता के नये शिल्प मे ढलने लगी है। चूडी का टुकडा, रेडियम की छाया, कुतुब के खडहर, जैसी कविताओ मे ये भावनाऍ सूक्ष्म रूप मे व्यक्त हुई है। डॉ० शम्भूनाथ सिह ने इन कविताओ के बारे मे लिखा है 'रीति कालीन श्रृंगारिक कविताओं से ये कविताऍ इतनी ही भिन्न है कि इनमे मुक्त छद और नये उद्दीपन विम्बो और अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ है।[३५] डॉ सिह से यहा सहमत नहीं हुआ जा सकता है। शभुनाथ सिंह का यह कथन गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं के संदर्भ मे अत्युक्तिपूर्ण है जिसकी संगति तार सप्तक की कविताओ से नहीं बैठाई जा सकती है। गिरिजा कुमार माथुर पर छायावादी 'श्रृगार भाव' की छाया तो लक्षित की जा सकती है, पर वे किसी कोने से रीतिकालीन भावबोध के कवि नहीं है। उनके विषय वस्तु मे सिर्फ टेकनीक की ही नवीनता नहीं बल्कि वस्तु भी नया है। यही नहीं के छायावाद के वृत्त को लगभग खण्डित करते हुए अपने परिवेश का सूक्ष्म चित्राकन करते हैं —

"क्वार की सूनी दुपहरी,
श्वेत गरगीले रुंए से बादलों में,
.तेज सूरज निकलता, फिर डूब जाता।
घरों मे सुनसान आलस ऊँघता है,
थकी राहें ठहरकर विश्राम करती

दूर सूनी गली के उस छोर पर से

नीम–नीचे खेलते कुछ बालको की

मिली–सी आवाज आती।

शभुनाथ सिह गिरिजाकुमार माथुर की इस कविता मे आ रहे (क्वार की दुपहरी) बडे किन्तु 'महीन' परिवर्तन को नहीं देख पाते। गिरिजाकुमार माथुर एक सचेत कवि है तार सप्तक के अपने वक्तव्य मे वे विषय और टेकनीक, भाषा और व्यजना, छद तथा ध्वनि विधान, आदि पर विस्तार से विचार करते हैं। गिरिजाकुमार माथुर का काव्य–विकास, छायावाद से प्रयोगवाद की तरफ हुआ हैं। इस विकास क्रम मे वे भाव और शिल्प दोनो मे परिवर्तन करते चले है। माथुर एक समन्वय शील कवि के रूप मे हमारे सामने आते है, इनमें परम्परा के प्रति आक्रोश नहीं मिलता बल्कि परम्परा और नवीनता का इनमें समन्वय मिलता है। कह सकते हैं कि छायावादी कवि दृष्टि और तार सप्तक की कवि दृष्टि का इनके यहॉ सयोजन हुआ है। और इस रूप मे ये परम्परा को भी आत्मसात किये हुए है।

गिरिजा कुमार माथुर काव्य मे टेकनीक को महत्ता प्रदान करने वाले कवि हैं। उनका कथन है कि क्लासिक विषयों पर गंभीर शैली (ग्रैंड स्टाइल) में लिखी कविताओ मे मैंनें गहरे रग, प्राचीनता लाने के लिए ही रखे हैं। यहाँ मैंने आधार भूमि विशाल कर दी है और डिटेल कम डिटेल मैनें रोमानी कविताओं में ही अधिक भरे हैं।[39] गिरिजा कुमार माथुर का काव्य शिल्प अत्यंत समृद्ध है। अपनी कविताई के लिए उन्होने विशेष किस्म की शब्दावली तैयार की है, शब्दों को गढ़ने, काटने, छांटने और सही प्रयोग करने में अत्यंत कुशलता का परिचय देते हैं। शब्दों के माध्यम से ध्वनि बोध और रंगबोध खुलकर सामने आता है। इनकी कविताओं में परम्परागत प्रतीक

और मनोविश्लेषणात्मक काम कुठा के प्रतीक दोनो मिलते है। छदो में भी उन्होने नवीन पयोग सफलता पूर्वक किये हैं कवित्त, रावैया और उर्दू गजलों को तोडकर अपने नवीन मुक्त छदो का इन्होने ने निर्माण किया है। भाषा की ताजगी, नये उपमान रग ध्वनि का उच्च स्तरीय सयोजन कवि के कलापक्ष और शिल्पपक्ष को पटुता प्रदान करते है।

६. रामविलास शर्मा -- (जन्म १६१२ - मृत्यु २०००)

तार सप्तक में राम विलास शर्मा की कुल १६ कविताएँ संकलित हैं। उनकी तारसप्तक की कविता के बारे मे 'रूप तरग' के परिचय मे लिखा है कि"रामविलास शर्मा जी की कविता मे 'जवानी की हुकार के साथ-साथ भारतीय ग्राम सौंदर्य तथा सर्वहारा वर्ग की वेदनाएँ भी सश्लिष्ट हैं।[35] तार सप्तक में सकलित अन्य कवियो मे से कुछ की आस्था मार्क्सवाद के प्रति है। उनमें डॉ० रामविलास शर्मा प्रकटत. मार्क्सवादी है। ऐसी स्थिति में उनकी प्रतिबद्धता मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति है और मार्क्सवाद जो प्रगतिवादी काव्यधारा का जीवन दर्शन है को रामविलास जी अपनी कविताओं मे व्यक्त करते हैं। रामविलास जी के भाव जगत में, 'गांव' बसा हुआ है। ग्रामीण सौदर्य उनके कवि हृदय को भीतर तक आह्लादित करता है। फलतः ग्रामीग सौन्दर्य के अनुभूति की तीव्रता और प्रखरता के चित्र उनकी कविताओं में मिलते हैं। रामविलास जी ग्रामीण प्रकृति को अपनी खुली आँखों से देखते हैं और उसी रूप मे रूपायित भी करते हैं। छायावाद के प्रकृति चित्रण से राम विलास जी का प्रकृति चित्रण अलग किस्म का है। यहाँ दृष्टव्य है उस ग्रामीण प्रकृति का एकचित्र–

'नीले रग मे डूब गया

सारा नभ मण्डल

पूर्व दिशा मे उठे घने दल के दल बादल

लहराती पुरवाई के झोको पर आये

धूल भरेलू से सुलझे खेतो पर छाये।

आमो के सुगध से महक उठी पुरवाई

पीउ–पीउ के मृद स्वर से गूज उठी अमराई।

(– किसान कवि और उसका पुत्र)

रामविलास जी प्रगतिशील काव्य आदोलन के अग्रणी कवियो में से है। प्रगतिशील काव्य आदोलन की ग्रामोन्मुख काव्य दृष्टि कविताओ का मुख्य विषय है। ग्रामीण प्रकृति उसका एक अग अथवा पक्ष है। दूसरा पक्ष गॉव की गरीबी, किसान–मजदूर का विषमतापूर्ण जीवन भी कवि को काव्य वस्तु बनाने के लिए विवश करता है। हड्डियो का ताप जैसी कविता मे उपनिवेशवादी देश के युवक और किसान मजदूर के शोषण का ऐसा ही चित्र खींचा गया है। ग्राम प्रकृति की झलक देखते हुए कवि अपने अन्तस्तल में पिछली स्मृतियो के बंद द्वार खोलने मे संलग्न होकर उसको 'अपलक' देखकर भी उस छवि को 'निराकार' पाते हुए पुन. अपनी वर्तमान छवि पर लौट आता है। जिसके आगे 'अनामत का अंधकार' गूंज रहा है।[35]

रामविलास शर्मा विचारधारा ने कविताओं में पिरोते भी हैं जिससे कविताओं का स्वाभाविक सौन्दर्य विनष्ट होता हैं। कहीं वे 'कार्य–क्षेत्र' में 'धरती के पुत्र' के हाथों से 'नये साल' फागुन में 'फसल' जो क्रांति की है, उसे कटवाते हैं तो कहीं गुरुदेव की पुण्य भूमि से 'फॉसीवाद के खिलाफ साम्राज्यवाद से युद्ध का संदेश

भिजवाते है। और 'जल्लाद की मौत' नामक कविता मे सभी मजदूरो और स्तालिन का फौलादी घान फासिस्टो और नाजी बर्बरता के गढ को ध्वस्त कर रहा है। रामविलास जी ऐसी कविताओ मे राजनीति के प्रचारक बन जाते हैं। उनकी ऐसी कविताओ मे अनुभूति की सघनता नहीं, बल्कि विचारो की प्रमुखता मिलती है। ऐसी कविताएँ, मर्म से उद्‌भूत नहीं हैं, मस्तिष्क से पैदा हुई हैं। तार सप्तक में संकलित कविताओ मे जहॉ कवि का भावबोध स्वाभाविक रूप से घनीभूत हुआ है वहॉ प्रकृति के अत्यत मनोरम और हृदय ग्राही चित्र खिच गये है।

रामविलास जी अपने वक्तव्य मे कहते हैं पुस्तको से सम्पर्क होने के कारण अनेक कविताएँ ऐसी है जिनकी प्रेरणा पुस्तकों से मिली है। दारा शिकोह ऐसी ही कविता है।,[४०] 'दारा शिकोह' प्रख्यात मुगल शासक शाहजहॉ का बडा बेटा था जो बहुत ही मानवातावादी था। उसकी दृष्टि मे हिन्दू और मुसलमान दोनो की अपनी संस्कृतियॉ थी और दोनों के मिलने से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है। औरगजेब के लिए इस तरह की बाते नाकाबिले वरदाश्त थीं। अत. छल पूर्वक उसने अपने इस बडे भाई की हत्या करवा दी। दारा शिकोह की मानवता उसे इतिहास मे अमर बना देती है और साम्प्रदायिक संकीर्णता के किसी भी घेरे को प्रतिकार का प्रतीक बन जाता है। यह कविता ऐतिहासिक वातावरण के साथ भाव और छंद की नवीनता से सयुक्त है। प्रयोग की दृष्टि से यह कविता अत्यंत सुंदर बन पड़ी है। रामविलास जी ने इसे रुबाई छद में लिखा है और दूसरी ओर दूसरी पंक्ति का निर्माण घनाक्षरी की पंक्ति को बीच से तोड़ कर किया है। रामविलास जी लिखते हैं 'इस सोलह अक्षर की पंक्ति में मैंने सॉनेट व ब्लैंक वर्स लिखा है।

रामविलास शर्मा ने निराला पर लिखी अपनी 'कवि' कविता में विस्तार से

अपने युग के एक सचेत कलाकार और उसकी जनोन्मुखता को उपेक्षित किये जाने पर गहरा असतोष प्रकट किया हैं। इस असतोष और क्षोभ के साथ ही वे एक तरह के आशावाद का सरलीकृत रूप सृजित करते है जिसमे संघर्ष का रास्ता न छोड़ने तथा निरतर आगे बढने की एक 'विचित्र' आशावादी स्वर मिलता है——

'पथ मे उन अमिट रक्त चिन्हो की रहे शान,
पर गिरते को पीछे भाते है, नौजवान,
इस बन मे जहॉ अशुभ ये रोते हैं श्रृगाल
निर्मित होगी जनसत्ता की नगरी विशाल।'

(– कवि)

रामविलास जी ने लोकगीत की शैली मे कविताएँ लिखी हैं। शैली तो लोकगीत है, पदावली भी कुछ लोक गीतात्मक है पर उसमें राम विलास जी ने नयी ध्वनियॉ भरी हैं, नये भाव भरे हैं। नये भावो से भरकर 'सत्यं शिवं ् सुन्दरम्' कविता नयी अर्थ छटाओ को एक भिन्न आयाम देता है——

'हाथी घोडा पालकी
जय कन्हैया लाल की
हिन्दू हिन्दुस्तान की
जय हिटलर भगवान की
जिन्ना पाकिस्तान की
टो जो और जापान की
बोलो बंदे मातरम्
सत्यं शिवं सुन्दरम्।

(– सत्यं, शिवं, सुन्दरम्)

उपर्युक्त उद्धरण मे व्यजना के द्वारा रामविलास जी अर्थ की छायाएँ उदघाटित करते हैं। 'जय हिटलर भगवान' की 'पक्ति के द्वारा वे हिटलर और भगवान की साम्यता दिखाते है। हिटलर अगर भगवान है तो निहायत ही निर्दय और भगवान हिटलर का प्रतिरूप है तो तानाशाह और हृदयहीन। इस पूरी कविता मे कवि लोक गीत का सारा सौन्दर्य ज्यो का त्यो बरकरार रखे है। कविता का पूरा अतर्बध एक 'लय' से भरा हुआ है। और 'टेक' का वाक्य सत्य शिवम् सुन्दरम हर बार नया अर्थ लेकर आता है। मिला जुलाकर यह कहा जा सकता है कि राम विलास जी पर निराला का प्रभाव स्पष्टत· दिख पड़ता है। कहीं उनका मेघमद स्वर, कहीं उदात्त कल्पना, कहीं छद विधान हर तरह के प्रयोग मे निराला उनकी कविता के आदर्श की तरह झलमलाते रहते है।

७. स. ही. वात्स्यायन अज्ञेय (१६११ - १६८७)

तार सप्तक मे अज्ञेय की (पुनश्च के बाद की कविताओं को छोड़कर) १७ कविताएँ है। तारसप्तक से पूर्व ही, अज्ञेय के 'भग्न दूत' और 'चिन्ता' दो काव्य संग्रह प्रकाशित थे। भग्नदूत मे अज्ञेय छायावाद का प्रकाश देखा जा सकता है। 'आंसू' के रचयिता पसाद की तरह, अज्ञेय भी लिखते है—

'विकले विश्व क्षेत्र मे खोजा

पुंजीभूते प्रणव वे दने

आज विस्मृता हो जा"

कवि का यह विकल मन चिन्ता में एक पूर्ति पा लेता हैं। अज्ञेय तार सप्तक से पूर्व भी प्रयोगधर्मा रहे है। वे प्रगतिवाद के स्वर में भी स्वर स्वर मिलाने का प्रयास करते हैं। 'स्नात वह मेरा साकी' का सुर प्रगतिवादी ही है। किंतु अज्ञेय का प्रगतिवादी

स्वर जल्दी ही मद पड जाता है। यह उनके व्यक्तित्व के अनुकूल भी नहीं था। अज्ञेय की अतर्दृष्टि सामाजिक यथार्थ पर उस रूप में टिक पाती जिस रूप मे प्रगतिशील कवियो की। उनके कवि व्यक्तित्व की बुनावट अत्यत ही जटिल है। वे अंत. यथार्थ और मनोवैज्ञानिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के कवि बन जाते है। तार सप्तक ने अज्ञेय को हिन्दी कविता मे एक नयी कवि परिपाटी के सूत्रधार की तरह पुरस्कृत किया। जहाँ से प्रयोगवाद की शुरूआत होती है, तार सप्तक में नवीन चेतना के संस्कारो से युक्त जिन अन्य छ कवियो को इन्होंने सकलित सपादित किया वे सभी अज्ञेय के शब्दो मे 'राहो' के अन्वेषी थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय खुद भी राहो का अन्वेषण करने मे लगे हुए थे। छायावादी काव्य सस्कार से मुक्ति पाने के लिए उन्होने कविता मे शिल्पगत और वस्तुगत दोनो तरह के प्रयोगों पर अतिशय बल दिया, हालाकि उनका इन प्रयोगो के लिए कोई स्पष्ट आग्रह नहीं था।

अज्ञेय ने तार सप्तक के अपने वक्तव्य मे यह स्वीकार किया है कि आज के कवि के सामने कई समस्याएं है। जैसे काव्य विषय भी, सामाजिक उत्तर दायित्व भी, 'सवेदना के पुन सस्कार भी।[४१] पर इनसे भी अधिक महत्त्व कविता की ग्रहण शीलता से है। वे कहते है कि कवि कर्म की ही मौलिक समस्या है कि साधारणीकरण और कम्युनिकेशन (सप्रेषण) की समस्या। यही वह बिंदु है जहाँ से कविता मे प्रयोग की शुरूआत होती है और कविता के भाव पक्ष की अपेक्षा शिल्प पक्ष के दरवाजे प्रयोग के लिए खुल जाते हैं और प्रयोगवाद का एक नया वाद बन जाता है।

अज्ञेय के काव्य पक्ष में आधुनिक युग के मानव की यौनवर्जनाओं का चित्रण मिलता है। इसके मूल की खोज में कवि सामाजिक वर्जनाओं को और सामाजिक रूढि को देखता है। इस कारण ही आज का मानव मन यौन परिकल्पनाओं से लदा

हुआ है और वे कामनाए, सब दमित और कुठित है। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रात है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है। इस तरह से भावबोध और काव्य शिल्प के स्तर पर अज्ञेय सवेदना के नये रूप की तलाश करते हैं। जिन वर्जनाओ से मुक्तिपाने की बात अज्ञेय करते है वह उनकी कई कविताओ मे व्यक्त हुई है। उनकी दो कविताए देखना ही पर्याप्त होगा।

(१) ठहर, ठहर आत तायी! जरा सुनले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार, आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले–
क्षणभर स्थिर खडा रह ले–
मेरे दृढ पौरुष की एक चोट सह ले!

(– जनाह्वान)

(२) जबकि सहसा तडित के आघात से घिरकर
फूट निकला स्वर्ग का आलोक,
वाध्यदेखा स्नेह से आलिप्त
बीज के यवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध,
वासना के पँक–सी फैली हुई थी
धारयित्री, सत्य सी निर्लज्ज, नंगी
औ समर्पित!

(– सावन मेघ–२)

इसी तरह के अनेक यौन बिम्ब तार सप्तक की कविताओ मे अज्ञेय ने खींचे है। अधिकाशत ये बिम्ब प्रकृति के उपादानों मे लिपट कर चित्रित हुए हैं। अज्ञेय ने साधारणीयकरण और संप्रेषण की समस्या को आज के कवि की एक प्रमुख समस्या माना है। वस्तुत. यह समस्या भावबोध की नवीनता जिसे हम आधुनिकता भी कह सकते है के कारण विषय वस्तु मे होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न हुई हैं। तार सप्तक का भाव बोध अलग तरह के काव्य सस्कार की माग करता है और पुराने काव्य सस्कार को तोडता भी है। अज्ञेय 'साधारणी करण' को छोडकर 'सप्रेषण' को वर्तमान कविता की समस्या मानते है। छायावादी और उत्तर छायावादी कविता तक यह समस्या नहीं थी लेकिन प्रयोगवादी अज्ञेय जितना मानसिक कठा में उलझते गये हैं उतनी ही उनकी कविता मे सप्रेषण की समस्या बढती गयी है। मानसिक कुंठा यौन बिम्बो के रूप मे प्रयुक्त हुई है तो व्यक्ति मन की चिन्ता गूढ़ शब्दावली मे भी व्यक्त की है।

तार सप्तक के वक्तव्य मे कवि ने डी. एच. लॉरेस को बड़ी श्रद्धा से याद किया है। डी० एच० लारेन्स अंग्रेजी साहित्य में उन्मुक्त यौन चित्रण के व्याख्याता रचनाकार रहे है। अज्ञेय पर आलोचकों ने टी०एस० इलियट का भी प्रभाव माना है पर टी० एस० इलियट जिस तरह से परम्परा और व्यक्तिगत प्रतिभा को जोड़ते हैं अज्ञेय उतनी ही व्यग्रता से परम्परा और वैयक्तिक प्रतिभा को अलग करते हैं। और इलियट के ही काव्य सिद्धान्त का अनुकरण करते प्रतीत होते हैं।

तार सप्तक में संग्रहीत अज्ञेय की कविताओं में 'वर्ग–भावना' ऐसी 'सटीक है कि यहॉ वर्ग–सघर्ष की चेतना –– मैथुन सुख से परिलक्षित होती है। यहाँ विभाजन मैथुन सुख और सुरति श्रम का है –– एक वर्ग है जो सुरति श्रम वाला है दूसरा वर्ग

मैथुन सुख का––

'अवतसो का वर्ग हमारा

खडगधार भी न्याय भार भी।

हमने क्षुद्र तुच्छतम जन से

अनायास ही बांट लिया

श्रम–भार भी, सुख–भार भी।

बल्कि बढ गये है आगे भी––

हम निश्चय हीं हैं उदार भी

टीका (यद्यपि भाष्यकार है दुर्मुख) :

हम लोगो का एक मात्र श्रम है सुरति–श्रम,

उस अन्त्यज का एक मात्र सुख है –– मैथुन–सुख।'

(– वर्ग भावना – सटीक)

अज्ञेय की तार सप्तक कविताओ में की कुल मिलाकर यौन कुठाओं के ही चित्र अधिक मिलते हैं और यही चित्र बार–बार प्रयुक्त होने से यौन प्रतीक भी बन गये है। छायावाद का मध्यवर्गीय युवक समाज से संघर्ष न करके अपनी आकांक्षा की पूर्ति हेतु प्रकृति मे रमता था, उत्तरछायावादी कवियो का युवक अपने को 'मधु' पीडित पाता है तो अज्ञेय का प्रयोगवादी युवक अपने लिए 'यौन कुंठा और उसकी वर्जनाओ से मुक्ति और युक्ति के द्वार खोल लेता है।

तार सप्तक की कविताओं में अज्ञेय का भाषा शिल्प का विवेक तत्सम प्रधान अभिव्यंजनोन्मुख हो जाता है। शायद यही वह बिन्दु है जो उन्हें छायावादी कविता की भाषा से विलग नहीं रहने देता।

संदर्भ

१ दिनकर – मिट्टी की ओर उदयाचल, पटना, पृष्ठ – १६४६

२ नया साहित्य – १, १६४६ –– शमशेर का लेख –तार सप्तक पर

३ डॉ० नामवर सिह – कविता के नये प्रतिमान –– पृष्ठ ८८ सस्करण १६६५

४ डॉ० नामवर सिह – कविता के नये प्रतिमान –– पृष्ठ ८८ संस्करण १६६५

५ डॉ० नामवर सिह – कविता के नये प्रतिमान –– पृष्ठ ८८ सस्करण १६६५

६ नददुलारे बाजपेयी आधुनिक साहित्य पृष्ठ १६–१७

७ भारत भूषण अग्रवाल प्रसगवश पृष्ठ २७

८ नयी कविता के प्रतिमान पृष्ठ १४०

६ पूर्ववत्

१० डा नगेन्द्र –– विचार और विवेचन पृष्ठ १४८

११ जगदीश गुप्त, आलोचना, १६५३ अप्रैल –– नयी कविता मे रस और बौद्धिकता

१२ तार सप्तक, भूमिका, पृष्ठ १३

१३ तार सप्तक, भूमिका, वक्तव्य, पृष्ठ क्रमशः ७, ८

१४ तार सप्तक मे वक्तव्य पृष्ठ क्रमश. २७३ चतुर्थ संस्करण, ८–४६, ५१, ५२

१५ तार सप्तक मे वक्तव्य पृष्ठ क्रमश. २७३ चतुर्थ संस्करण, ८–४६, ५१, ५२

१६. तार सप्तक मे वक्तव्य पृष्ठ क्रमशः २७३ चतुर्थ संस्करण, ८–४६, ५१, ५२

१७ तार सप्तक मे वक्तव्य पृष्ठ क्रमशः २७३ चतुर्थ संस्करण, ८–४६, ५१, ५२

१८ द्रष्टव्य तार सप्तक में संकलित 'कवि गाता है' अपने कवि से, कविता क्या है, जैसी कविताएँ

१६ तार सप्तक में संकलित

२० लका उर्मा नयी कविता के प्रतिमान पृष्ठ ७६।

२१ पूर्ववत, पृष्ठ १३६–४०।

२२ अज्ञेय, तार सप्तक, दूसरे सस्करण की भूमिका पृष्ठ छ

२३ गिरिजा कुमार माथुर, नयी कविता सीमाए एव सम्भावनाए

२४ मुक्तिबोध, तार सप्तक, प्रथम सस्करण, पृष्ठ ४३

२५ पूर्ववत्

२६ डॉ नामवर सिह, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल नई दिल्ली पृ ६७

२७ नेमिचद्र जैन, तार सप्तक, वक्तव्य

२८ पूर्ववत्

२६ भारत भूषण अग्रवाल, तार सप्तक, द्वितीय सस्करण, वक्तव्य

३० माचवे, तारसप्तक, वक्तव्य

३१ माचवे, तारसप्तक, वक्तव्य

३२ वक्तव्य

३३ माथुर, गिरिजा कुमार, वक्तव्य

३४ माथुर, गिरिजा कुमार, वक्तव्य

३५ निराला, मजीर की भूमिका पृष्ठ ४, १६६३, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

३६ प्रयोगवाद और नयी कविता शंभूनाथ सिंह

३७ गिरिजा कुमार माथुर तार सप्तक वक्तव्य १२४

३८ रूपतरग, परिचय – संस्करण का १६६० पृष्ठ १८

३६. रूपतरग, परिचय – संस्करण का १६६० पृष्ठ XIX

४० रामविलास शर्मा का तार सप्तक वक्तव्य पृष्ठ १८६ पंचम संस्करण

४१ अज्ञेय, तार सप्तक, वक्तव्य।

अध्याय - चार

'तार सप्तक' कवियों का काव्य चिन्तन

"यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग विराग नहीं बदले –प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी धृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान मे रखना होगा कि राग वही रटने पर भी रागात्मक सबधो की प्रणालियॉ बदल गयी है और कवि का क्षेत्र रागात्मक सबधो का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर बहुत गहरा असर पडा है। . . जैसे–जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है– वैसे वैसे हमारे उससे रागात्मक सबध जोडने की प्रणालियां भी बदलती हैं– और अगर नहीं बदलती तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है। कहना न होगा कि जो आलोचक इस परिवर्तन को नहीं समझ पा रहे है, वे उस वास्तविकता से टूट गए हैं जो आज की वास्तविकता है। उससे रागात्मक संबध जोड़ने में असमर्थ वे उसे केवल बाह्य वास्तविकता मानते हैं जबकि पीछे हम उससे वैसा संबध स्थापित करके उसे आन्तरिक सत्य बना लेते हैं। और इस विपर्यय से साधारणीकरण की नयी समस्याएं आरंभ होती हैं।"

– अज्ञेय

दूसरा सप्तक की 'भूमिका'

(क) सर्वेक्षण

अपने प्रसिद्ध निबध 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' मे डॉ. विजयदेव नारायण साही ने छायावाद, छायावादोत्तर और नयी कविता काल में भारतीय राजनीति, समाज और साहित्य के अत· सबधो की विवेचना करते हुए विस्तार से उस समय की 'भारतीय मानसिकता' बडा ही सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वह काल खण्ड भारतीय समाज मे स्वतत्रता सग्राम का है। उस समय गान्धी, नेहरू के विचारो का 'भारतीय मानस' पर बडा गहरा प्रभाव था। साहित्य पर रवीन्द्र का प्रभाव भी अक्षुण्ण था। पूरा 'भारतीय मानस' जैसे एक ही सोच से अनुप्राणित हो रहा हो। साही ने महात्मा गाधी का हवाला देते हुए उनके एक तत्कालीन विचारों का एक अश उद्घृत किया है।

The nation have progressed both by evolution and vevolution. The one is necessary as the other. Death which is an eternal verity, is revolution as birth and after is slow and steady evolution Death is as necessry for man's growth as life itself. God is the greatest Revolutionst the would has ever known or will know. He sends deluges. He sendl storme where a moment ago there was clam. He levels down mountains which he builds with exquirite care and infinite patience. I do water the sky and it tills me with awe and wander. In the server blue sky, Both of India and England, I have seen clouds gathering and buming with a fury which has struck me dumb. History is more a record of won-

derful revolutions than the co-called ordered progress no history more so then the English. And I beg to inform the correspondent that I have sean people trudging slowly up mountaain and have also seen men shooting up the air through great heights."[1]

साही ने गॉधी जी का यह लम्बा उदाहरण इसलिए नहीं दिया है कि यह उस समय की राजनीतिक चेतना को व्यक्त करने वाला अश है, बल्कि इसमे जो काव्यात्मकता है उसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन हिन्दी साहित्य की 'धड़कन' में भी सुनी जा सकती थी। साही ने सारे पद गिनाए हैं 'जीवन और मृत्यु', 'क्रान्तिकारी ईश्वर', 'प्रलय प्रवाह', 'विस्तृत आकाश', 'विकराल प्रलय–मेघ', 'घूटते हुए उल्का पिण्ड' – 'सरीखा मनुष्य' साही के अनुसार 'आपको छायावाद युग का स्पन्दन कुछ–कुछ स्पर्श करता हुआ प्रतीत होगा।' इस सदर्भ में साही का निष्कर्ष है कि छायावाद की हर रचना एक ही साथ नैतिक भी है, कल्पनात्मक भी है और राजनैतिक भी है। और उदाहरण दिया प्रसाद का 'बीती विभावरी जागरी' या निराला की 'राम की शक्ति पूजा' या पंत का 'धूम धुँआरे काजर कारे' या महादेवी का 'जाग तुझको दूर जाना'[2] साही इसे 'नैतिक अथवा कलात्मक 'विजन' कहते हैं। इस 'नैतिक अथवा कलात्मक विजन' के आलोक में छायावादी अपनी काव्य साधना करते हैं। 'इसीलिए छायावाद का लघु प्रतिक्षण महत् में विसर्जित या विलीन हो जाने को आतुर है। या हम यों कहें कि छायावादी दृष्टि उसे उस आतुरता के क्षण में ही पकडती है। उससे पहले, या उसके तले, वह देखती ही नहीं। उसके लिए लघु का कोई साकार, ठोस, प्रतिरोधी रूप प्रस्तुत ही नहीं होता। मानव या तो महामानव है, या है ही नहीं। चाहे यह महामानव प्रधानतः नैतिक हो या कल्पनात्मक।'[3] साही

'मनुष्य की प्राण शक्ति' है दिग्दर्शक का एक मात्र रास्ता इसे ही नहीं मानते। 'लघु' के महत् ने परिवर्तित होने के बदले हुए 'टोन' को साही उत्तर छायावादियों अथवा जिसे छायावादोत्तर कविता भी कहते हैं मे पाया। इन कवियो मे बच्चन, भगवती चरण वर्मा, दिनकर आदि कवि आते हैं। इन कवियो के बदले हुए टोन को भी समझने के लिए साही 'राजनीतिक परिस्थितियो' को प्रधान कारक मानते हैं। साही नेहरु के जिस कथन से तीसरे दशक की शुरुआत मानते हैं, वह निम्न प्रकार से है:

Was it for this that our people had behaved so gallantly for a year? Where all our brave words and deeds to end is this? The independence resolution of the Congress, the pledge of Jan 26, So often repeated? So I lay and pondered on that March right, and in my heart there was a great emptiness as of something precious gone, almost beyond recall.

"This is the Way the World ends.
Not with a bang but a whimper."

- J.L. Nehru: Autobiogrphy.[4]

पण्डित नेहरु ५ मार्च, १९३१ को यह महसूस कर रहे थे। ४ मार्च को गान्धी इरविन समझौता हुआ था। ऊपर से सब कुछ अपनी भव्यता में ही उपस्थित था। किन्तु नेहरु कहीं अंदर ही अंदर कुछ टूटता हुआ महसूस कर रहे थे। साही उपर्युक्त मनः स्थिति से उत्तरछायावादियों की सर्जना पुरुष की अगंभीर मानसिकता को जोडकर देखते हैं। साही बच्चन, दिनकर, भगवती चरण वर्मा के पात्रों में एक टूटे हुए 'साधारण आदमी' को आकार ग्रहण करता हुआ पाते हैं। साही 'महामानव' और

'लघुमानव' के तर्ज पर इसे 'साधारण मानव' कहना पसद करते है। साही का निष्कर्ष है कि "मै थोडी शब्दावली मे बडे परिवेश मे बडे आदमी की कविता, छोटे परिवेश मे छोटे आदमी की कविता, साधारण परिवेश मे साधारण आदमी की कविता कहना पसद[५] करता हूँ। यानी 'छायावादी महामानव' यहॉ 'साधारण आदमी' मे तब्दील हो जाते है। साही इस परिवर्तन को नेहरु की उपर्युक्त 'रिक्तता' से जोडते हैं। साही कहते है "जो लहर पूरे कसाव और उन्माद के साथ पिछले दस–बारह वर्षों से उत्तरोत्तर बढती हुई गति से उडी थी, यह जैसे अपनी चरमता पर पहुँचकर किसी चट्टान से टकराई और छितरा गई।[६] और इन्हीं टुकड़ों के इन्द्रधनुष उत्तर छायावादी की कविताओ मे उतर आया है। इन कवियों की कविताओं में ऐसा लगता है 'जैसे अग्रेज कवि लार्ड बायरन के पचासो टुकडे कर दिए गए हो और उनमे से कुछ–कुछ टुकडे इन तमाम कवियो की 'जवानी' में अलग–अलग जज्ब कर दिए गए हैं।[७] इस युग के ये कवि 'अस्थिर मस्तिष्क' (Ficle minded) है, जिनमें न तो गंभीरता थी और न ही स्थिरता। साही इस मनोदशा को 'अगम्भीरता' कहते हैं। इस मनः स्थिति की अनिवार्य परिणति की ओर साही सकेत करते हैं– "अज्ञेय और उनके साथियों के सामने – जो 'तार सप्तक' में संगृहीत हुए– समस्या यह थी कि तीसरे दशक के काव्य मे जो अनिवार्य अगम्भीरता थी, उससे मनोभूमि को फिर किस प्रकार गम्भीरता की ओर वापस लाया जाये। इसका एक ही उपाय था– अर्न्तध्वनित सत्य और बाह्य सत्य के जिस अन्तर को महसूस करते हुए भी तीसरा दशक झुठलाना चाहता था, उसे पूर्णत. स्वीकार कर लिया जाये।[८] इस 'गम्भीरता' के तलाश की शुरुआत 'तार सप्तक' द्वारा हुई थी, साही का यही निष्कर्ष है।

इस बिन्दु पर एक दो बातों पर अलग से विचार करने की आवश्यकता है।

प्रथम तो यह कि इस पूरे प्रसग मे साही प्रगतिशील आन्दोलन को अत्यन्त कम करके आकते है। प्रगतिशील आन्दोलन इसी काल की देन है, जिसकी अन्तर्ध्वनि पूरे भारतीय साहित्य मे फैल जाती है। प्रगतिशील आन्दोलन भक्ति आन्दोलन की तरह ही पूरे भारतीय साहित्य मे अपनी जनोन्मुखता के लिए सुख्यात है। यह भी उसी युग की देन है। प्रेमचन्द की विरासत का विकास इसी दिशा मे होता है। यह अकारण नहीं है कि राहो के इन अन्वेषियो मे से अधिकाश के रूझान मार्क्सवाद की तरफ ही है।

दूसरी बात यह कि 'तार सप्तक' में दोनो धाराएँ– अगम्भीरता की धारा और सुचिन्तित प्रगतिशीलता की धारा मिलती हुई दिखती है। इन दोनों धाराओ का अनोखा सगम 'तार सप्तक' मे एक होता हुआ लगता है। अगले दशक में अज्ञेय आदि की धारा तो 'व्यक्तिवादी मनोवृत्तियो' तक ही सीमित होकर रह जाती है जबकि मुक्तिबोध आदि की धारा व्यापक सरिता का रूप ले लेती है। व्यक्तिवाद मुक्तिबोध मे भी है, किन्तु उस व्यक्तिवाद की बेचैनी में एक सामाजिकता पाने की छटपटाहट है– वे पास के या नहीं? यह प्रश्न यहाँ गौण है। इन्हीं राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियो की देन 'तार सप्तक' है जो उस संकलन के कवियो की भावभूमि और कला संबंधी दृष्टि को निर्धारित करती है। आखिर जिस काव्यधारा की वस्तु और कला को अज्ञेय जैसे महान् कवि ने पूरी तरह से नकारा था वह तो प्रगतिशील धारा की ही मान्यताएं और स्थापनाएं थीं। चाहे वे काव्य संबंधी हों या कला संबंधी। साही ने अपने उपर्युक्त निबंध में प्रगतिशील धारा के महत्व को अत्यंत कम करके ऑका है। प्रयोगवादी काव्य धारा के जिस व्यक्तिवाद को वे आगे पर्यवसित होते देखते हैं, उसके समानान्तर चलने वाली केदार, त्रिलोचन, नागार्जुन

की भी धारा है। वह किस राजनीतिक परिणति को व्यक्त करती है? इस प्रश्न को साही ने अनुत्तरित ही छोड दिया है। साराश यह कि उपर्युक्त तथ्यो के आलोक मे ही 'तार सप्तक' के कवियो की काव्य दृष्टि पर विचार किया जाना चाहिए।

'तार सप्तक' के कवियो में इतनी विविधता है कि सबकी कविताओं और 'वक्तव्यो' मे व्यक्त स्थापनाओ मे तीखी टकराहट की गूँज सुनाई देती प्रतीत होती है। पूरा 'तार सप्तक' सगीत के एक आकैस्ट्रा सा लगता है जहा अनेक तरह के वाद्ययंत्रो की आवाज का घुला--मिला स्वर सुन पड़ता है। यह वैविध्य 'तार सप्तक' की कविताओ की अन्तर्वस्तु को भी प्रतिध्वनित करता है। अतर्वस्तु ही वस्तुत. उनके शिल्प का भी निर्धारण भी करती है। सुविधा की दृष्टि से अन्तर्वस्तु और शिल्प संबंधी इन कवियो की दृष्टि को दो उपभागों में देखने की जरुरत है जिसे सिद्धान्त निरुपण उपशीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(ख) सिद्धान्त निरुपण

अन्तर्वस्तु—अन्तर्वस्तु का संबध केवल कविता की विषय वस्तु से नहीं है। यह कवि के रचनालोक और उसके बाह्य संसार से है। अपने बाह्य परिवेश को ही अनुभूति का अग बनाकर कवि अपनी कविता मे प्रस्तुत करता है। मुक्तिबोध इसे और अधिक शास्त्रीय शैली मे व्यक्त करते हैं— ''काव्य की वस्तु, अर्थात् मनस्तत्व (जिसके भीतर बाह्य जीवन जगत् के बिम्ब और अन्तर की प्रतिक्रियाएँ दोनो का समावेश होता है।) कवि मन के भीतर की अन्तर्तत्व व्यवस्था का ही एक भाग होते हैं।''[१] परिवेश का यह आभ्यन्तरीकरण और उसका बोध हर कवि का अलग—अलग होता है। इसी से उसकी काव्य चेतना भी निर्मित होती है। जो कवि जितना संवेदनशील होगा, उसकी काव्य चेतना उतनी प्रखर और संभावनाशील होगी। बोध की यही चेतना किसी कवि की काव्य दृष्टि का निर्धारण करती है। कवि का यह बाह्य परिवेश सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक स्तरो से बनता है। 'तार सप्तक' के कवियो की काव्य दृष्टि भी उपर्युक्त परिवेश के बोध के ही परिणाम हैं। इन्हें अलग—अलग बिन्दुओं मे देखना उचित होगा।

'तार सप्तक' के कवियो का संबंध मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश से है। स्वभावतः मध्यवर्गीय समाज की विशेषताओं से वे युक्त हैं। उनकी यह विशेषता खूबियों और खामियों दोनों के वे शिकार हैं और वे उन्हें व्यक्त भी करते हैं। ये कवि यदि मध्य वर्गीय व्यक्तिवादी असंतोष और अतृप्ति के ग्रस्त हैं तो समाज से जुड़ने की आकाक्षा भी इनमे है।'तार सप्तक' के इन कवियों में मध्यवर्गीय व्यक्तिवादी संस्कार और अभिलाषा का यह द्वन्द्व बड़ा ही प्रखर है।

मुक्तिबोध ने 'तार सप्तक' के अपने वक्तव्य में अपने व्यक्तिगत दायरे से

निकल कर पूरी दुनिया को देखने की अभिलाषा व्यक्त की है। वे लिखते है "आज के वैविध्यमय उलझन से भरे रग–बिरगे जीवन को यदि देखना है तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उडकर बाहर जाना ही होगा। कला का केन्द्र व्यक्ति है, पर उसी केन्द्र को अब दिशा व्यापी करने की आवश्यकता है।"[१०] मुक्तिबोध की 'तार सप्तक' की कविताओ का प्रधान तत्व मध्यवर्गीय व्यक्ति का यही अन्तर्द्वन्द्व है। 'आत्मसंवाद' कविता में यह द्वन्द्व खुलकर व्यक्त हुआ है। उपर्युक्त वक्तव्य की चेतना भी इसमे है कि वह परिस्थितियो के पक्ष–विपक्ष दोनो को वह समझता है। 'व्यक्तित्व के खण्डहर' के व्यक्ति की क्रातिकारी चेतना प्रसुप्त है। जीवन में किए गए तमाम समझौतो के कारण उसका व्यक्तित्व खोखला हो गया है और वह कुण्ठा का शिकार हो चुका है। किन्तु 'कुण्ठा' के बीच से कभी बिजली की तरह कौंध कर वस्तु स्थिति से युक्त चेतना उसे बेचैन कर देती है। यह पूँजीवादी समाज मे दोहरा जीवन जीते व्यक्ति की समस्या है, जो कभी तो अपने स्वार्थ के लिए समझौते करता है और कभी समस्याओ से लडने के लिए कमर भी कसता है। 'आत्मा के मित्र मेरे' का सच्चा स्वरूप आस्था का ही है। इन कविताओ में मुक्तिबोध का स्वर आस्थाऔर अनास्था या निराशा के बीच झूलने वाले का है। मुक्तिबोध की यह विकलता उनके मध्यवर्गीय समाजिक जीवनानुभवो की देन है। इस विकलता और द्वन्द्व ने अपने रास्ते की तलाश भी की है।

"देख जलते स्पन्दनों में क्या उलझता ही गया है,
जो नयी चिन्गारियाँ
नव स्वप्न का आलोक ले
उत्पन्न होती जा रही है।

उन सबलतम, तीव्र, कोमल देश की चिन्गारियो मे

जो खिले हैं स्वप्न रक्तिम, देख ले जी भर उन्हे तू।"[11]

मुक्ति बोध का यह आत्मसघर्ष ही उन्हे जनजीवन से जुडकर कुछ नया करने की प्रेरणा देता है।

नेमिचन्द्र की कविताओ का समाज मध्यवर्गीय युवक का ही समाज है, जिसमें मध्यवर्गीय सस्कारो और उसको तोड फेंकने के विवेक का द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व के बीच भी कवि सौन्दर्यानुभूति के लिए वक्त निकाल ही लेता है। 'तार सप्तक' मे संगृहीत 'अनजाने चुपचाप', 'डूबती सध्या जैसी कविताएं इसी तथ्य को उद्घाटित करती हैं। प्रेम के चित्रण मे भी कवि का मन रमा है। 'इस क्षण मे' स्वस्थ प्रेम का सुन्दर चित्रण मिलता है। यह प्रेम कवि की उदासी, निराशा और ग्लानि को दूर करता है। 'आगे गहन अधेरा' मे 'सस्कार और विवेक' का द्वन्द्व झलकता है। संस्कार उसे अपने तक सीमित रखना चाहता है और विवेक कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। 'जिन्दगी की राह' मे कवि जीवन की गतिशीलता में विश्वास व्यक्त करता है, उसमें आगे बढ़ने की चाह भी है, वह मंजिल भी पाना चाहता है लेकिन मंजिल की दूरी और अकेलापन उसे निराश करता है। यह उदासी और निराशा मध्यवर्गीय युवक की उदासी और निराशा ही है। किन्तु जन समुदाय से मिलकर कुछ करने की तड़प भी कवि मे है।

"सब भटकना छोड़ पन्थी

आाज आओ साधना की राह,

जीवन एक ऐसी राह।

सर्वहारा,

प्रगति के उद्दाम नव उन्माद से बेचैन

आकुल एक धारा,

एक सतत प्रवाह

ऐसी जिन्दगी की राह।

जीवन एक लम्बी राह।''[१२]

लेकिन इस द्वन्द्व मे कवि पर उसका सस्कार ही हावी है। उसकी मंजिल उससे दूर ही रहती है। उसका सारी तडप और बेचैनी धरी रह जाती है:

''किन्तु पथ–दर्शक

विवश मैं हार जाता हूँ भयकर मौन से,

बेमाप अपने प्राण मे छाये हुए एकान्त से,

सतत निर्वासित हृदय से।''[१३]

इस कविता का काव्य नायक हताश है, किन्तु हताशा में भी उसमे थोडी ऊर्जा बची हुई है। पर यह ऊर्जा ऐसी नहीं कि अपने समाज के गतिशील जीवंत तत्वों तक, वह पहूँच सके। उसकी यह कमजोरी मध्यवर्गीय सामाजिक व्यक्ति की कमजोरी है। लोगो से न जुड पाने के कारण उसे व्यर्थता का बोध होता है।

एक अन्य कविता 'उन्मुक्त' में कवि को फिर से अपनी उस ऊर्जा का भान होता है और वह सपाती की तरह अपने बल पर सब कुछ को उलट देने की कोशिश करता है। कविता की पंक्तियाँ हैं—

'वह आज चीर देगा अम्बा का उर अनंत,

युग–युग की जड़ता का कर देगा आज अंत,

वैषम्य श्रृंखलाएं होंगी सब चूर–चूर

उग रही स्वर्ण रेखाएँ समता की सुदुर।"[14]

उपर्युक्त पक्तियो मे मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता अपने उत्कर्ष पर है। जब उसे वर्ग स्थिति का ज्ञान कराने वाला भाषण सुनाया जाता है तब वह पूरे जोश और उत्साह से व्यवस्था को बदलने के लिए खडा हो जाता है। उन्मुक्त का काव्य नायक भी ऐसा ही है। मुक्तिबोध की कविताओ मे व्यक्गित संवेदना का जो तनाव मिलता है वह नेमिजी मे नहीं मिलता। वैसे नेमिजी की तार सप्तक की कविताओं में आस्था, से उदासी और व्यर्थता बोध ज्यादा प्रामाणिक रूप में व्यक्त हुए हैं। भारत भूषण अग्रवाल की कविताओ मे समाज के प्रति आस्था तो मिलती है किन्तु समाज से उनका लगाव कम ही है। 'सीमाए : आत्मस्वीकृति', मसूरी के प्रति, जैसी कविताओं में समाज के प्रति उनकी आस्था दिखती है पर पंत की तरह वह बौद्धिक आस्था ही है। वह कहीं से हृदय को नहीं छूता उनकी यह सामाजिक चेतना, बौद्धिक प्रक्षेत्र से निकल नहीं पातीं। कवि जहॉ उपदेशक की तरह भावना का प्रेषण करता है वहॉ वह सफल होता दिखता है। 'जागते रहो' प्रात की प्रत्यूष वेला, फूटा प्रभात, पथहीन आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। तार सप्तक के वक्तव्य मे वे खुद कहते हैं, मेरी ये कविताएं केवल एक पलायन ही नहीं वरन् स्वप्नलोक की थीं जहॉ मैंने अपनी समस्याओं से भागकर केवल शरण ही नहीं लिया, वरन् साथ ही असामाजिक नुकीले व्यक्तित्व द्वारा उत्पन्न अपनी असंभव इच्छाओं की पूर्ति भी देखी।.... ... कम से कम मुझे मेरी कविता ने भावो का उत्थान नहीं दिया न उसने मेरे हृदय का परिष्कार किया। दूषित समाज ने मुझे जो असामाजिक कमजोरियॉं और गलित स्वार्थदान में दिये, मेरी कविता ने उन्हीं की पीठ ठोंकी।"[15] उपर्युक्त कथन के बावजूद भारत भूषण अग्रवाल कविता में सामाजिक सरोकार को खूब अच्छी तरह समझते हैं।[16] यदि कविता का

उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच स्वर देना और उसको शुभ बनाने मे सहायता करता है, तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की इस शोषण सत्ता से लडना होगा। जिसने उसको कोरा स्वप्नभिलाषी और कल्पनाभिलाषी बना छोडा है। और जिसने उसको अपनी कविता के ही एक मात्र सपत्ति मानने के भ्रम मे डाला है. . तब कविता उसके हाथ में एक मूल्य वान अस्त्र की भाति होगी। आज की तरह अपार्थिव, अस्तित्वहीन फूलों की सेज नहीं।

प्रभाकर माचवे यथार्थवादी कवि के रूप मे सामने आते हैं। उनके यहाँ गिरिजा कुमार माथुर की तरह भावुकता और रोमांस नहीं है। वे अपने वक्तव्य में भी प्रगतिशीलता के पक्षधर दिखाई पडते हैं। निम्न मध्यवर्ग–शीर्षक कविता में पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का उन्होने यथार्थ चित्र खींचा है। वे कहते है कि निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति के पास न तो खाने पीने की संपन्नता है, न रहने को मकान फिर भी वह अपने को निम्न वर्गीय लोगों से उच्च समझता है तथा उच्च वर्ग की नकल करता है। ऐसे लोग ही सबसे पहले क्रांति और नवीनता का नाम सुनकर डरते हैं।

गिरिजा कुमार माथुर की काव्य दृष्टि भावुकता और रोमानियत से युक्त है। माथुर की कविताओं के विषय वस्तु उदास दोपहर, संध्या या रात के खाली कमरों में सूने पलग के साथ जुडी मिलन की यादें, 'नींद भरे आलिंगन', चूड़ी की फिसलन, मीठे अधरों की धीमी–धीमी बातें और प्रेमिका की लज्जित छवियाँ। माथुर की तार सप्तक की सभी कविताएँ, इन्हीं मनःस्थितियों पर बुनी गयी हैं। प्रकृति जहाँ कहीं भी आयी है तो इन मनःस्थितियों के 'बैक ग्राउण्ड' के रूप में। कुल मिलाकर गिरिजा

कुमार माथुर की सारी उदासी और रूमानियत के मूल मे मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रेम प्रसग ही है। वह एक ऐसी दुनियॉ का नायक है जो शिक्षा प्राप्त कर जीविका की तलाश मे इधर उधर भटक रहा है और अपने प्रेम को याद करता है। आलोचकों ने इसे वैक्यूम या सूनेपन की स्थिति कहा है। इस वैक्यूम को वह अपनी प्रेमिका की यादो से भरता है। अपनी इस व्यर्थता की खोज कवि या काव्य नायक दो पाटो की दुनिया मे करता है——

> "प्रौढ सभी कायम है,
>
> जवान सब अराजक है,
>
> वृद्ध जन अपाहिज है,
>
> मुह बाए हुए भावक है,
>
> हम क्या करे .
>
> तर्क और मूढता के भ्रम से कैसे छूटे।

(– दो पाटो की दुनियॉ)

तार सप्तक के कवियो मे डॉ रामविलास शर्मा सबसे संतुलित दृष्टि वाले कवि है, उनमे न तो किसी तरह का द्वद्व भाव है न ही पराजय बोध। इनकी कविता मे मजदूरों की समस्याएँ हैं। जिसे वे अपनी प्रतिबद्ध सामाजिक दृष्टि से देखते हैं। शोषण, उत्पीडन, अत्याचार जैसी सामाजिक समस्याओ का चित्रण करता हुआ कवि कहीं भी न तो दुविधाग्रस्त है और न हीं कहीं कमजोर होता है। कवि जानता हैं कि अपनी स्थितियों को बदलने के लिए संघर्ष आवश्यक है और रास्ते समस्याओं से जूझने पर ही निकलते हैं किसी ईश्वरीय चमत्कार से नहीं। शर्मा जी की महत्वपूर्ण कविताओ मे गुरुदेव की पुण्य भूमि, हड्डियों का ताप, किसान कवि और उसका पुत्र

इन्ही विचारो से ओत प्रोत है।

तार सप्तक मे सकलित अज्ञेय की कविताएँ सामाजिकता विहीन है। यहॉ की कविताओ मे अज्ञेय अपनी नितात वैयक्तिता को स्थापित करने मे तत्पर दिखते हैं। अपने वक्तव्य मे वे कहते है सत्य व्यक्ति बद्ध नहीं है, और जितना ही व्यापक है उतना ही काव्योत्कर्ष कारी। अज्ञेय अपनी कविताओं से एक तरह से भ्रम पैदा करते है। उनके वक्तव्य भी भ्रम पैदा करने वाले हैं। जनाह्वान शीर्षक कविता जिसे आलोचक जनता के पक्ष में व्याख्याति विश्लेषित करते हैं वह भी वैयक्तिक अतिक्रांतिकारिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अज्ञेय की आस्था न तो जनता में ही है और न समाज मे। उनके 'जनाह्वान' मे भी उनका जनाह्वान शीर्षक तक ही सीमित है। कविता मे उनका अहकारी व्यक्तित्व आत्म गौरव के भाव से उद्दीप्त है।

तारसप्तक की कविताओं मे अज्ञेय यौन कुठाओ से भी घिरे हैं। प्रेम संबधी उनकी कविताओ मे कहीं भी अपर पक्ष के प्रति सहभागिता अथवा विश्वास नहीं मिलता है। यहॉ भी अविश्वास की कुठा ही उनके मन में है। अज्ञेय ने अपने वक्तव्य मे स्वीकार भी किया है कि आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओ का पुज है। अज्ञेय की तारसप्तक की कई कविता व्यक्तिगत यौन वर्जना प्रकट करने का खुला माध्यम बन गयी है। इस दृष्टि से 'सावन–मेघ' जैसी कविता की कुछ पंक्तियॉ दृष्टव्य है

> आह, मेरा श्वास है उत्तप्त—
>
> धमनियो में उमड़ आयी है लहू की धार——
>
> प्यार है, अभिशप्त–
>
> तुम कहॉ हो नारि?"

यौन कुठा की समस्या दरअसल अज्ञेय अथवा, मध्यवर्गीय व्यक्ति की ही समस्या हो सकती है जिसे उन्होने सार्वजनीक बना दिया है।

तार सप्तक मे अज्ञेय का कहना है कि 'यथार्थ दर्शन केवल कुठा उत्पन्न करता है।'' अज्ञेय के इस कथन को औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। यथार्थ दर्शन से कुठित वह होता है जो उस यथार्थ से सघर्ष नहीं करना चाहता। जो सघर्ष करना नहीं चाहता उसके मन मे कुंठा उत्पन्न होगी ही। अपने प्रेम को लेकर कुठा छायावादी कवियो मे भी देखने को मिलती है। विफल प्रेम के बाद छायावादी 'काव्य नायक' समाज से लडने की अपेक्षा, अपने प्रेम को पाने के बजाय समाज से भागकर प्रकृति मे मुह छिपाता है। और आहें भरता है उदाहरण के लिए प्रेम संबंधी पंत की कविताएँ, देखी जा सकती है। अज्ञेय का वक्तव्य इसी तथ्य को प्रमाणित करता है। सप्तक मे संकलित राम विलास शर्मा की कविताओं मे भी जीवन के यथार्थ दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु जीवन की समस्याओ से सघर्ष करते किसान मजदूर कहीं कुठित नहीं होते। अज्ञेय की सारी कुठाएं समाज के एक ऐसे वर्ग की हैं जहाँ वर्जना पर कोई सामाजिक पाबदी नहीं है। वहाँ के जीवन मूल्य व्यक्ति के अनुसार बदलते है। वहाँ समाज का कोई विशेष आग्रह नहीं होता। वह समाज सर्वतंत्र स्वतंत्र है–

यह सही है कि अज्ञेय ने वर्जना की कुंठा और 'यथार्थ दर्शन' से उत्पन्न कुंठा की चर्चा अपने वक्तव्य मे की है। ये दोनों कुंठाएं, एक खास मनःस्थिति की देन हैं। या तो आप समाज से कटकर बिल्कुल अलग हो गये हैं या समाज ने आपको बिल्कुल छोड़ दिया हो दोनों ही स्थिति व्यक्ति और समाज का एक दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करने वाला ही होता हैं अज्ञेय की कुंठा व्यक्ति और समाज के इसी द्वंद्व से उत्पन्न हुई है।

तारसप्तक की कविताओ मे अज्ञेय की प्रकृति सबधी कई कविताएँ हैं। इनमे अज्ञय ने प्रकृति के मनोरम चित्र खींचे है––

'सहमकर थमसे गये है बोल बुलबुल के
मुग्ध, अनझियज्ञ रह गये है नेत्र पाटल के
उमस मे बेकल अचल हैं, पात चालदल के
नियत मानो बंध गयी है, व्यास मे पल के।

(– भादो की उमस)

अज्ञेय की तार सप्तक की कविताओ मे प्रेम के प्रति आकर्षण की दुर्निवार अभिव्यक्ति हुई है। अज्ञेय इन कविताओ मे अपनी कमजोरी को सिरसा स्वीकार करते हैं। यह एक ईमानदार कवि की सहज अभिव्यक्ति है–––

'घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कपित उरोजो पर झुका सा
विशद, श्वासाहत चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष––
व्रज सा, यदि तडित से झुलसा हुआ सा।

(– सावन मेघ १)

कुल मिलाकर तार सप्तक के सभी कवियो में सामाजिक चेतना का व्यापक भाव है। इनकी सामाजिक चेतना के विविध पक्ष तत्कालीन देशकाल की स्थितियों से प्रभावित हैं। अज्ञेय आदि जिन कवियों में सामाजिकता का अभाव है ––– वह भी उत्तरछायावादी कवियों की मनोवृत्ति का ही विस्तार है और इसके ही कारण तत्कालीन परिस्थितियो मे दूढे जा सकते हैं। सही है तार सप्तक के सभी कवियो का

सामाजिक बोध समान नही है, मुक्तिबोध, नेमिचद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल रामविलास शर्मा की अपेक्षा, अज्ञेय गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं मे यह कम है। इनमे व्यक्तिगत आकाक्षाएँ अधिक मुखर है। मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन मे व्यक्ति और समाज का द्वद्व और आत्म सघर्ष है। भारत भूषण अग्रवाल और माचवे जी की सारी सामाजिकता बौद्धिक और आडी हुई लगती है।

जिस तरह हिन्दी साहित्य के मध्य काल मे किसी कवि की पहचान उसके पथ से जुडी हुई थी उसी तरह आधुनिक काल मे किसी साहित्यकार की पहचान उसकी राजनीतिक सोच से होती है। राजनीति की समझ उसके पूरे कवि व्यक्तित्व को बनाता है। अत. आज राजनीति से बचकर कोई नहीं रह सकता। राजनीति न करने वाले लोग भी एक तरह की राजनीति करते है। जो घोषित रूप से राजनीतिक समझ के अनुसार कार्य करते है। उनसे उनके जीवन के सारे कार्य कलाप प्रभावित होते हैं। एक तरह से कहे तो राजनीतिक समझ ही उनका जीवन दर्शन है। यह बात पूरी तरह से आधुनिक युग के साहित्यकारों पर लागू होती है। साहित्य की शाश्वतता और राजनीति को सामयिक घोषित करने वाले लोग भी एक तरह की विरोध मूलक राजनीति करते ही है। नेमिचद्र जैन ने सही लिखा है, राजनीति को सामाजिक बताकर उसका साहित्य से बहिष्कार करने की जड मे या तो किसी न किसी राजनीतिक विचारधारा विशेष के बहिष्कार की माग होती है। अथवा उस युग के उलझे हुए सवालों से बच निकलने की थी।[६]

मुक्तिबोध साहित्य तथा अन्य कला से राजनीतिक संबंध को बताते हुए लिखते है 'एक कला सिद्धान्त के पीछे एक विशेष जीवन दृष्टि हुआ करती है, उस जीवन दृष्टि के पीछे एक जीवन दर्शन होता है, और उस जीवन दर्शन के पीछे

आजकल के जमाने मे एक राजनीतिक दृष्टि भी रहती है।[20] राजनीति और कविता के सबध को डॉ० नामवर सिह ने भी स्पष्ट किया है, वे कहते हैं, निःसंदेह एक अर्थ मे सभी कविताएँ, राजनीतिक होती है वे भी जिनमे कवि अपने राजनीतिक सदर्भ के प्रति सचेत नहीं होता। इस आज की द्वंद्वात्मकता को बरतोल ब्रेख्त ने इन पंक्तियो मे जैसे हमेशा के लिए व्यक्त कर दिया है,

यह कैसा जमाना है

कि पेड़ो के बारे में बातचीत भी लगभग जुर्म है।[21]

क्योंकि इसमे बहुत सारे कुकर्मो के बारे में चुपी शामिल है?

जब एक चुप्पी भी संदर्भ के द्वारा अर्थ पा जाती है तो फिर किसी भी कविता का राजनीतिक अर्थ पा लेना स्वयंसिद्ध है। जागरूक कवि अपने कवि कर्म के दौरान सतर्कता के साथ इस राजनीतिक सदर्भ को परिभाषित करते चलते हैं और इस प्रकार सीधे राजनीतिक विषयो पर कविता न लिखते हुए भी अपनी प्रत्येक रचना को एक निश्चित राजनीतिक अर्थ दे देते हैं।[22]

तार सप्तक के सदर्भ में यह बात ध्यान देने की है कि इसके कवियों में सम्पूर्ण हिन्दी कविता के इतिहास मे सम्भवत. पहली बार अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता घोषित की है। मुक्तिबोध कहते है 'क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधि ाक दार्शनिक अधिक मूर्त और अधिक तेवर की दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।[23] तारसप्तक के दूसरे कवि नेमिचंद्र जैन ने भी अपने को 'क्रियात्मक रूप से राजनीतिक सक्रिय तथा मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट कहा है। भारत भूषण अग्रवाल दो कदम और आगे बढ कर कहते है कि 'आज कल राजनीति का अध्ययन अच्छा लगता है। मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूँ। कम्युनिस्ट हूँ।[24] डॉ.

रामविलास शर्मा की प्रतिबद्धता जग जाहिर है। अपने वक्तव्यो मे माचवे और अज्ञेय ने अपनी 'राजनीति' की ओर सकेत नहीं किया है। किन्तु व्यावहारिक जीवन में ये दोनो भी राजनीतिक कार्यकर्त्ता थे। अज्ञेय ने मेरठ के किसानो के बीच सगठन का काम किया था और माचवे ने उज्जैन में मजदूरों को सगठित किया था। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि घोषित अघोषित रूप से तार सप्तक के छ. कवि 'राजनीतिक चेतना से सबद्ध थे। सिर्फ माथुर ही ऐसे कवि थे जिन्होने न तो अपने वक्तव्य मे और न ही अपनी कविताओ से कहीं भी अपनी राजनीति का हवाला नहीं दिया है। तार सप्तक के इन राजनीतिक कवियो ने अपने अपने हिसाब से मार्क्सवाद का ग्रहण किया था, अपनी चेतना का निर्माण किया था, इसलिए सबकी समझ एक जैसी नहीं है। मुक्तिबोध और नेमिजी मध्य वर्ग के लोगो को निम्न वर्ग से जोडने पर जोर देते हैं और इसमे ही सार्थकता देखते हैं। किन्तु अपने मध्यवर्गीय सस्कार को वे तिलाजलि नहीं दे पाते। फलत उनकी कविताओं मे द्वन्द्व और व्याकुलता मिलती है। मुक्तिबोध इस द्वन्द्व के तीखेपन को अनेक तरह के तनावों के रूप में व्यक्त करते हैं। नेमिचद जैन मे यह सघर्ष नहीं मिलता। मुक्तिबोध —

> "नये नये मेरे मित्र गण
>
> मेरे पीछे आये हुए युवा बालजन
>
> धरती के घन
>
> खोजता हूँ उनमे ही
>
> छटपटाती हुई मेदी छाँह।"[२५]

(— एक आत्म वक्तव्य, तार सप्तक)

भारतभूषण अग्रवाल मार्क्सवाद मे आस्था तो व्यक्त करते हैं लेकिन उनमे

भाव का यह अग नहीं बन पाता। अत. मुक्तिबोध जैसा तनाव और अकुलाहट उनकी कविताओ मे नही है। माचवे का मार्क्सवाद के प्रति प्रेम भी कुछ इसी तरह का है। माचवे और अग्रवाल 'देशोद्धारको से' और 'अहिंसा' जैसी कविताओ मे राजनीतिक व्यग को सफलता पूर्वक चित्रित करते है जो तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का सही रूप प्रकट करती है। रामविलास शर्मा मे न तो किसी तरह का द्वंद्व है न तनाव ही। उनकी दृष्टि बडी साफ है तौर पर मार्क्सवादी है किसानों मजदूरो की पक्षधरता उनकी विशेषता है। दृढ स्वरों में वे कहते है, ——

> काटनी है, नये साल फागुन मे
> फसल जो क्रांति की।[२६]
>
> (— कार्य क्षेत्र)

तार सप्तक मे सकलित कविताओ मे अज्ञेय अपनी एक राजनीतिक दृष्टि व्यक्त करते है। कहीं न कहीं उनके मन मे भी मार्क्सवाद के प्रति एक दबी हुई आकाक्षा छिपी हुई है। कम से कम वे इसके प्रति सहानुभूति अवश्य रखते हैं। वे अपनी एक कविता मे कहते हैं——

> मेरा पथ तेरे ध्वस्त गौरव का पथ है
> और तेरे भूत काले पापो मे प्रवाहमान, लाल आग
> मेरे भावी गौरव का रथ है[२७] —
>
> (— जनाह्वान)

ध्वस्त गौरव का पथ जन विरोधी शोषक वर्ग का है जबकि प्रवाहमान लाल आग' शोषितों के पक्ष को व्यक्त करता है। पर बाकी कविताओं में एक भावाकुल सवेग मिलता है। कुल मिलाकर अज्ञेय, व्यापक जनमानस से सहानुभूति रखने वाले

कवि तो है पर शोषित जनता के साथ उसके पक्ष मे खडे होकर बोलने वाले नहीं।

गिरिजा कुमार माथुर न तो अपने वक्तव्य और न ही अपनी कविताओ मे अपना राजनीतिक पक्ष स्पष्ट करते है। किन्तु अपनी एक कविता मे वे अपने मत का सकेत करते से दिखते हैं——

"है अन्त हुआ जाता मेरा
इन अतहीन इतिहासो मे
जाने कैसी दूरी पर से
मुझ पर लम्बी छाया पडती
किसकी आधी आवाज भरी
मेरे बोझीले गिरते हुए उतारो मे
मै अधिकारी ना होने वाली बातो का
मै अनजाना मै हूँ अपूर्ण।

(– अधूरा गीत)

कवि का यह स्वर 'उत्तर छायावादी' मध्यवर्गीय युवक की दृष्टि को ही व्यक्त करता है।

साराशत. तार सप्तक के सभी कवियों की अपनी राजनीतिक दृष्टि है। अधिकाश मे मार्क्सवादी रूझान है किन्तु उनमें स्वर एक से नहीं हैं। स्वरों की यह भिन्नता कहीं न कहीं तत्कालीन राजनीतिक परिवेश की भिन्नता को ही व्यक्त करता हैं। कुछ कवि राजनीतिक दृष्टि से इतने सम्पन्न हैं कि वे राष्ट्रीय राजनीति ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी अपने पक्ष–विपक्ष को पहचानते हैं। राम विलास शर्मा और प्रभाकर माचवे में 'फासिस्ट विरोध' को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

मनुष्य के जीवन–व्यवहार पर देश और समाज की आर्थिक व्यवस्था का सीधा प्रभाव पडता है। कोई भी 'सामाजिक' अपनी आर्थिक स्थितियो से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आर्थिक आधार हमारी चिन्तना और सम्वेदना पर असर डालता ही है। आर्थिक प्रभाव की प्रक्रिया साहित्य से प्रच्छन्न रूप से जुड होती है। वैसे तार सप्तक के सभी कवि अपने विचारो मे और अभिव्यंजना मे पूजीवादी अर्थव्यवस्था वाले समाज की ही देन है। इसी कारण इन सबके भीतर पूजीवादी जकड के प्रति असतोष का भाव है। पूजीवाद के प्रभावो की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध उसे 'कविता का दुश्मन' मानते हैं। वे मानते हैं कि 'पूंजीवाद एक बार सुप्रतिष्ठित हो जाने पर सास्कृतिक क्षेत्रों मे सबसे पहले कविता पर हमला करता है। कविता को समस्त भावनाओ से छिन्न कर इस विशाल परस्पर द्वन्द्व में, महान गुणो से युक्त वैविध्यपूर्ण जीवन–जगत् के सार्थक स्पदनो से बहुत दूर यह युग उसे (कविता को) निष्प्राण अथवा क्षीण छाया समान बना देता है।[२८]

अपनी वैचारिक प्रक्रिया के चलते मुक्तिबोध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वाले समाज से घृणा करते है क्योंकि वे इस पतनशील व्यवस्था के सत्य को पहचान रहे थे। इसीलिए वे अंदर के असतोष को जनमानस के संताप से जोड़कर पूंजीवादी व्यवस्था के समूल नाश की कामना करते हैं। 'नाश देवता' की वंदना वे इसी लिए करते हैं। उनका 'नाश देवता' और कोई नहीं भारत के जन हैं, जिनके संताप की आग और जीवन का दु:ख मिलकर समाज के अन्धकार को हर लेंगें :

> "सभी उरों के अंधकार में एक तड़ित वेदना उठेगी
>
> तभी सृजन की बीज बृद्धि हित जडावरण की मही फटेगी
>
> शत–शत वाणों से घायल हो बढा चलेगा जीवन अंकुर

दशन के चेतन किरणों के द्वारा काली अमा हटेगी।"[२९]

(— नाश देवता, तार सप्तक)

बावजूद अपनी प्रगतिशील उद्घोषणाओं के तारसप्तक के सभी कवि निम्न मध्यवर्गीय कमजोरियो से ग्रस्त है। इनकी यही कमजोरियॉ उन्हे जन जीवन से दूर स्वप्न लोक मे भटकाती है। यह वर्गीय सीमा निश्चय ही पूॅजीवादी अर्थ व्यवस्था की देन है——

'परिस्थितियों का पिता है वर्ग और समाज पूॅजी का

और मेरे विकल मन की सभी सीमाऍ

वहीं से नि.सृत हुयी हैं।[३०]

(— 'सीमाऍ . एक आत्क स्वीकृति)

भारत भूषण अग्रवाल की उपर्युक्त 'सीमाऍ · एक आत्मस्वीकृति' कविता की ही तरह प्रभाकर माचवे ने 'वह एक शीर्षक कविता' मे पूजीवादी अर्थव्यवस्था के समाज पर पडने वाले प्रभावो और व्यक्ति से निरंतर व्यक्ति के विलगाव की ओर बढते जाने की बात की है। पूँजीवादी व्यवस्था का मूल गुण है कि वह उच्च वर्ग को मानवता से मध्य वर्ग को अपने से और निम्न वर्ग को श्रम से विलग कर अमानवीय जीवन का सार ढेलता है। प्रभाकर माचवे की इस कविता में श्रम विमुक्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है। इस कविता में अखबार बेचने वाले हॉकर की दुनिया भर की घटनाओ – दुर्घटनाओ से निर्मित होते जाने और किसी भी तरह अखबारों के बिकने तक सकुचित रह जाने का चित्रण है :

"वह क्या समझता है राजनीति? खाक–धूल!

उसे क्या पता है यह फैला कहाँ तक है मैला जीवन–दुकुल

उसको न परवाह कांग्रेस नैया की पतवार––

वाम पक्ष पै है या हरामपक्ष पै है,

वह जानता है महावार तन्खा साढे तीन कलदार।"[31]

(– प्रभाकर माचवे · वह एक)

गिरिजाकुमार माथुर पूँजीवाद के प्रभाव को 'आत्म विस्मृति' के रूप मे दर्ज करते है। इनका 'अजनबीपन' पूँजीवादी व्यवस्था की देन है––

"निर्जन–दूरियों के

ठोस दर्पणों में चलते हुए

सहसा मेरी एक देह तीन हो गयी

उठकर एक बिन्दु पर

तीन अजनबी साथ चलने लगे।"[32]

(– गिरिजा कुमार माथुर : देह की दूरियाँ)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वर्गीय विषमता को अज्ञेय ने अपनी कई कविताओं मे प्रकट किया है। वे उनकी आलोचना करते हैं जो दूसरो के श्रम–शोषण पर जीवित है। अज्ञेय मानते है कि उच्च वर्ग परजीवी हैं और उसके यहाँ मात्र 'सुरति–श्रम' ही है। दूसरी तरफ एक बडा श्रमिक वर्ग है जिसे सिर्फ मैथुन सुख मिला है। अज्ञेय श्रम और सुख दो बिन्दुओ को रखकर पूँजीवाद पर व्यंग्य करते हैं।

अर्द्धसामन्ती व्यवस्था में दबे कुचले लोगों की आवाज को रामविलास शर्मा अपनी कविता का विषय–वस्तु बनाते हैं। वे देखते हैं दिन भर काम करने वाला मजदूर पेट भरने को पर्याप्त अन्न नहीं पा रहा है। फसल की कटाई के बाद ऐसे लोग खेतो मे गिरी हुई बालियाँ चुनते हैं और इन्हीं गिरी बालियों से अपनी भूख मिटाते

है। रामविलास शर्मा औद्योगिक समाज से इतर कृषक समाज के शोषण को अपनी कविताओ मे जगह देते है।

निष्कर्षत हम कह सकते है कि तार सप्तक के कवियो मे किसी भी तरह के शोषण का गहरा प्रतिकार है। ये कवि ऐसी किसी भी व्यवस्था को सहन नहीं करते जहॉ शोषण का राज हो। रामविलास शर्मा इन कवियो मे पूजीवादी शोषण के अतिरिक्त ग्राम जीवन मे व्याप्त सामन्ती शोषण पर अपनी दृष्टि रखते है। दूर तक प्रभाकर माचवे की कविताओ में भी सामन्ती शोषण के चित्र मिलते हैं। यही इन कवियो की आर्थिक दृष्टि है।

तार सप्तक के सभी कवि प्राचीन भारतीय सस्कृत के विनष्ट होते जाने से चिन्तित हैं। उनकी चिन्ता इकहरी नहीं, बल्कि दुहरी है। जहॉ प्राचीन संस्कृति नष्ट हो रही है वहीं कोई नई सस्कृति नहीं बन पायी है। अज्ञेय मानते हैं कि प्राचीन सामाजिक संगठनो के टूटने से हमारी सजीव सस्कृति और परंपरा मिट गई है। वे इस बात से भी चिन्तित है कि हमारे लोग जीवन में से लोक गीत, लोग नृत्य, फूस के छप्पर और दस्तकारियॉ निकलती जा रही हैं। वे मानते हैं कि समाज को बाधने वाला कोई सूत्र नहीं रह गया है। जो जहॉ सुविधा पाता है वहॉ रहता है। अपने पड़ोसियों से उसका कोई जीवित संबंध नहीं। मुक्तिबोध मानते हैं, "जो पुराना है, अब लौटकर नहीं आ सकता लेकिन नये ने पुराने का स्थान नहीं लिया। धर्म भावना गई लेकिन वैज्ञानिक बुद्धि नहीं आयी। धर्म ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को अनुशासित किया था। वैज्ञानिक मानवीय दृष्टि ने धर्म का स्थान नहीं लिया। इसलिए केवल हम अंत:प्रवृत्तियों के यत्र से चालित हो उठे।"[33] धीरे–धीरे प्राचीन संस्कृति की जगह एक दूसरे तरह की पूंजीवादी संस्कृति फैल गयी है। यह सस्कृति शासक वर्ग द्वारा

अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए तथा जनता को उसके ज्वलत प्रश्नो से विमुख रखने के लिए फैलायी गयी। जहॉ मध्यकाल में यह कार्य बहुधा धर्म द्वारा संचालित था आज पूजीवाद के युग मे सत्ता इसके प्रचार मे लगी है। पूंजीवादी संस्कृति के इस मायाजाल को और उसके छलावो को मुक्तिबोध समझते है——

> "इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि
> इतना ज्ञान, सस्कृति और अतःशुद्धि
> इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छद
> जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बंध
> इतना गूढ, इतना गाढ सुदर जाल
> केवल एक जलता सत्य देते टाल।"[३४]

(— पूँजीवादी समाज के प्रति)

जो लोग अपनी इस विछिन्नता और अलगाव के वस्तुगत कारणों को नहीं समझते वे अपने आप मे ही डूबे रहते हैं, अपने आपको ही दोषी समझते हैं। किसी भी भाषा का कवि या कलाकार उस भाषा की सास्कृतिक परिधि का केन्द्र होता है। 'कवि गाता है' कविता मे नेमिचन्द्र जैन ने ऐसे युग के कवि–कलाकारों के चरित्र को रेखाकित किया है जो वर्गभ्रमों का शिकार होकर सामाजिकता खो चुके हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि कवियों और कलाकारो की भी एक सामाजिकता होती है। यह उसका दायित्व है कि वह अपने समाज के पीड़ितो–उपेक्षितों के सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करे। नेमि जी अपने वक्तव्यो मे कहते हैं 'कवि पर भी अन्य व्यक्तियों की भांति एक नागरिक और सामाजिक दायित्व है। वे कवि के सामाजिक दायित्व को रेखांकित करते हुए कहते है कि ऐसा न करने पर 'उसकी अन्तस्चेतना मे दरार पड़ जाती है,

जिसका सीधा असर उसकी कविता पर पडता है । बिना सचेष्ट नागरिक, वास्तवदर्शी हुए कवि अधिक काल तक कवि नहीं रह सकता।'[३५]

प्रभाकर माचवे वैज्ञानिक आविष्कारों को पूँजीवादी सस्कृति की देन मानते है। पूजीवादी सस्कृति उनके अनुसार शोषण की सस्कृति है, जिसमे श्रमिक ही भूखा मरता है। इस सस्कृति का मूल आधार व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना है। बीसवीं सदी की पूँजीवादी संस्कृति को रेखाकित करते हुए 'बीसवीं सदी शीर्षक कविता में वे लिखते है .

"बीसवी सदी ने हमे क्या दिया?
मोटर, रेल, किसान, क्रातियाँ
यह बेतार, सवाक चित्र पट,
कागज मुद्रा आर्थिक सकट
गति अन्तशयता वेगातुरता
कहीं प्रपीडन कहीं प्रचुरता
इन सारे आविष्कारों ने
जग को उन्नत किस तरह किया।"

(– 'बीसवी सदी')

'डरू संस्कृति' शीर्षक कविता मे माचवे ने पूँजीवादी संस्कृति के मूल तत्वों को समझने की कोशिश की है।

तारसप्तक के कवियों में प्रभाकर माचवे और रामविलास शर्मा की कविता में देशज सस्कृति की गंध मिलती है। माचवे अपनी 'बसंतागम' कविता में गांव का पूरा वातावरण प्रस्तुत करते हैं। रामविलास शर्मा गांव की संस्कृति से अपनी दृष्टि को

जोडते है। तार सप्तक के किसी भी कवि मे इस जीवन की झलक नहीं मिलती। वहाँ उनकी कविता मे बरगद के पेड़ के नीचे जमी हुई महफिल है तो दूसरी ओर रात के पिछले पहर मे मेला जाने की तैयारी कर रहे लोग है। कहीं पागुर करती हुई गाय है और कहीं कनेर के पीले–पीले फूल है। राम विलास जी अपनी कविता में शास्त्रवादियो की तरह निराश नहीं है। युगो से चली आती हुई रूढियों को वे अपने पूर्वजों की देन मानते है और उम्मीद करते है——

'विषाक्त जलधि के हृदय मे,
फूटकर धीरे धीरे
उठ रहा मुक्ति का कमल वह
खिलेगा जो एक दिन काले जल तल पर
नव अरुण आभा में नव सतयुग के प्रकाश मे।

(– 'कलियुग')

निष्कर्षतः तार सप्तक के सभी कवि सामाजिक चेतना से परिपूर्ण हैं। तार सप्तक के मूल मे व्यक्गित और सामाजिक चेतना के बीच तीव्र भिड़न्त हैं। यही बिन्दु तार सप्तक का भी केन्द्र हैं। मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा की तुलना में गिरिजा कुमार माथुर की सामाजिक चिन्ताएँ एकांगी है। अज्ञेय अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता की कोई घोषणा नहीं करते पर प्रच्छन्न रूप से वे दबाए हुए अपमानित लोगों को अपने से जोड़कर देखते हैं।

मुक्तिबोध का मन शंकाकुल तृषित होते हुए भी मरू में अमर जल स्रोत खोजता है। यह सच है कि वे अकेले पन के दुःख और निराशा से कभी–कभी ग्रसित हो जाते है परन्तु उससे हार नहीं मानते, इस लिए उनकी कविताओं में यथार्थ चेतना

के साथ–साथ सामाजिक चेतना भी मिलती है।

प्रभाकर माचवे ने अपनी कविताओ मे पूजीवादी अर्थतत्र और सस्कृति की जमकर आलोचना की है। इस सदर्भ मे प्रभाकर माचवे की ग्रामीण प्रकृति तथा वातावरण के प्रति सजगता रेखाकित करने योग्य है।

उदास दोपहर, सध्या या रात में मिलन की रग भरी यादे, गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं का प्राणतत्व हैं। माथुर की कविताओ मे आए हुए रोमानीपन, थकान, उदासी के स्वर को मध्यवर्गीय जीवन बोध और उसकी वास्तविकता से जोड़कर देखा जा सकता है।

प्रेम, प्रकृति और शोषित जन अज्ञेय की तार सप्तक की कविताओं के केन्द्र मे हैं। इनकी कविताओ मे प्रेम और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। अज्ञेय की प्रेम और प्रकृति की कविताए दोनो की स्मृति की कविताएं है। इसका मतलब यह नहीं कि अज्ञेय की तार सप्तक की कविताओं मे समकालीन परिवेश गायब है। इनकी कविताओ मे शोषको के प्रति घृणा और शोषित जनो के प्रति प्रतिबद्धता को लक्षित किया जा सकता है।

(i) कला या शिल्प पक्ष :

कविता में वस्तु और रूप या कथ्य और शिल्प का परस्पर द्वन्द्वात्मक संबंध होता है। बहुधा दोनो एक दूसरे पर प्रभावी रहते हैं। इस आधार पर वस्तु और रूप को अलग कर देखना उचित नहीं। किसी भी कविता में शिल्प की नवीनता मायने नहीं रख्ताा यदि कविता मे आ रहे जीवनानुभवों में नवीनता न हो। किसी भी कविता को उसके द्वारा प्रक्षेपित नूतन अनुभव पुराने शिल्प में सभव नहीं रह जाता। तार सप्तक के कवियो में रूप का नयापन इसलिए सभव है कि उन्होंने अपने जीवनानुभव

को नया आयाम दिया था। प्रस्तुत अध्याय मे वस्तु और रूप को अलग–अलग विवेचित करने का प्रयारा मात्र सुविधा के कोण से किया गया है। यहाँ भाषा, छन्द, बिब, प्रतीक, लय, अलकार तथा अन्य काव्य रूपों सबंधी दृष्टियों की चर्चा की जा रही है।

भाषा कवि के अनुभव और ज्ञान के स्रोत के साथ ही अभिव्यक्ति का अवलब भी है। वह कवि के अनुभव से उसके लेन–देन को प्रकट करती है। किसी भी कवि की काव्य–दृष्टि की परीक्षा के लिए भाषा की पडताल आवश्यक है। तार सप्तक के कवि भाषा के सकट से ग्रस्त हैं। उन्हे निरन्तर बोध होता रहा कि पूर्ववर्ती भाषा उनके कथ्य के लिए उतरन की तरह है। बदली हुई परिस्थितियो मे छायावादोत्तर भाषा निष्प्राण और गतिहीन दिख रही थी। तार सप्तक में सगृहीत मुक्तिबोध की कविताओं की भाषा उनके पूर्ववर्ती कवियों की भाषा से बिल्कुल अलग है। यह जरूर है कि वह बहुत सुघड और साचे मे ढली हुई नहीं है। मलयज ने कहा है कि "मुक्तिबोध की भाषा उत्ताल तरगो पर हिचकोले खाते हुए एक विशाल जहाज का परिचय देती है, जो स्नायविक ऊर्जा उस जहाज को चला रही होती है। उसे इस बात का खतरा लगा रहता है कि किसी भी वक्त उस जहाज का भयानक चट्टान से ले जाकर भिड़ा देगी। मुक्तिबोध की शक्ति इस बात में है कि वे भाषा के उठान और गिरान के अन्तिम बिन्दु तक भाषा का अपनी अटूट संवेदना से साथ देते हैं।. . . . . . बाह्य जगत के समस्त कार्य–व्यापारो को भाषा एक ऐसे विशद बिंबलोक में परिवर्तित कर देती है जिसकी प्रत्येक वस्तु रचनाकार की मानसिक ऊर्जा में खिंची गति का चित्रलिखित रूप प्रस्तुत करती है।"[36] मुक्तिबोध भाषा के प्रति अपनी चैतन्यता और तनाव को इन पक्तियो मे व्यक्त करते हैं–

"अधियाली गलियो मे घूमता है

तडके ही रोज

कोई मौत का पठान

मॉगता है जिन्दगी जीने का ब्याज

अनजाना कर्ज

मॉगता है चुकाने मे प्राणो का मास।"[37]

(– एक आत्मवक्तव्य')

नेमिचन्द्र की भाषा तार सप्तक की कविताओं में बोलचाल की ही भाषा है या हम कह सकते हैं कि नेमिचन्द्र अपनी कविता की वस्तु के अनुसार भाषा मे बदलाव लाते हैं। लेकिन कभी–कभी उनके शब्दों का प्रयोग छायावादी पदावली का बोध कराता है। ऐसा उनके रोमैटिक बोध वाली कविताओ में अधिक दृष्टिगत होता है—

"कुछ अनमनी उदासी से तुम!

सहज भाव से

अपने विकच लोचनो के ऊपर से—

वे लोचन–जिनमें प्रतिपल में

छलक छलक आती है बरवश

छनी हुई करूणार्द्र मधुरमा

जिनसे होकर सुमुखी

तुम्हारे स्नेह का सब गीलापन

बिखर–बिखर आता है।"[38]

(– 'अनजाने चुपचाप')

भारत भूषण अग्रवाल यह मानते है कि उनके पूर्ववर्ती छायावादी कवि एक नयी भाषा का निर्माण कर रहे थे। उन कवियो के सामने सस्कृत का अपार शब्द–भण्डार था और लोक भाषा का प्रयोग उनकी बाध्यता नहीं थी, पर अपने युग की भाषा के बारे मे वे मानते है, कितनी सकुचित जीर्ण वृद्धा हो गई आजकल की भाषा।" इस जीर्णता को त्यागकर भी वे सस्कृत के शब्द भण्डार की तरफ न जाकर मिट्टी के पुतलो की जुवान मे अपन कवित्व ढूँढते है ——

"यह सदा स्वर्गवासिनी रही

अप्सरा बनी

जाने दो इसको स्वर्ग,

खोज ले आज यहीं

अपनी मिट्टी के पुतलो के शब्दों में ही

अपना कवित्व

हमको न जरूरत आज देववाणी की

हम खुद ढालेगे जीवन की मिट्टी मे भाषा

जी चाहा रूप बना लेगे।"[३६]

(–'अपने कवि से')

भाषा का आदर्श जनभाषा मानते हुए भी भारत भूषण अग्रवाल उसका समुचित निर्वाह नहीं कर पाते। 'पद्यहीन' कविता में इस बात को देखा जा सकता है——

"पर महाजन–मार्ग –गमनोचित न सबंल है

न रथ है

अतरात्मा अनिश्चय सशय–ग्रसित

क्राति–गति –अनुसरण योग्या है न पद सामर्थ्य।"

भारतभूषण अग्रवाल की तरह प्रभाकर माचवे की भाषा को भावानुकूल रखने की वकालत करते है। वे शब्दों की अभिधामूला लक्षणा की अपेक्षा व्यंजना शक्ति को वरीयता देते हैं। उनकी भाषा के आदर्श छायावादी निराला और छायावादोत्तर नरेन्द्र और नवीन की भाषा है। तार सप्तक की कविताओ मे आयी उनकी भाषा युगीन विसगतियों को उजागर कर सकी हैं। इन्होंने कहीं सस्कृत की तत्सम पदावली का प्रयोग किया है, कहीं उर्दू मराठी, कहीं बोचलाच की भाषा के शब्दों का। माचवे कविता के भीतर प्रयुक्त शब्दो की अन्तर्लय को बनाये रखने के लिए बहुत सारे शब्दों का सक्षिप्त रूप रखते हैं।

उनकी कविता मे चाय–चाय है, वहॉ – वॉ है, यहाँ यॉ है।

तार सप्तक के कवियों मे शब्द–चयन की दृष्टि से गिरिजा कुमार माथुर की सजगता भिन्न है। वस्तु के अनुरूप इनका शब्द–सयोजन बदलता रहता है। यही नहीं वातावरण निर्माण में भी इनका शब्द–चयन भिन्न होता है। 'पतला नभ', 'सिमटी किरण', 'आदिम छाहे' तथा 'घूमते स्वर' इसी तरह के प्रयोग हैं। गिरिजाकुमार माथुर की कविताओ की भाषा के बारे मे भारत भूषण अग्रवाल मानते हैं, "उनकी पच्चीकारी सच्ची अनुभूति को ही छिपाने का प्रयत्न होती है।"

तार सप्तक की कविताओं में राम विलास शर्मा की भाषा अपने कथ्य के अनुरूप जनोन्मुख सामान्य बोल चाल की भाषा है। जिस पृष्ठभूमि की उनकी कविताएँ हैं, उस पृष्ठभूमि को चित्रित करने के लिए वहाँ के शब्दों को रंग की तरह वे कविता में इस्तेमाल करते हैं। 'सिलहार', 'कंटाई', 'राशि', 'बिगटी–बरहे', 'सींला–चमार',

बीनना जैसे पदावली उनकी कविता को एक नया मुहावरा प्रदान करते है .

"पूरी हुई कटाई, अब खलिहान मे,

पीपल के नीचे है राशि सुची हुई,

दोनो भरी पकी वालो वाले बडे

पूलो पर पूलो के लगे अरभ है" 'सिलहार'

रामविलास शर्मा की कविताएँ अपनी काव्य भाषा लेकर आती हैं। कह सकते हैं कि रामविलास जी के यहाँ गढ़ी हुई भाषा के स्थान पर स्वअर्जित भाषा का प्रयोग है।

काव्य –भाषा के प्रश्न पर अज्ञेय कई महत्वपूर्ण प्रश्नों से जूझते हैं। वे मानते हैं "शब्दो का ज्ञान और शब्दो की अर्थवत्ता की सही पकड ही कृतिकार को कृतिकार बनाती है।" भाषा और शब्द के प्रति किसी भी कवि को अतिरिक्त लगाव रखना ही पडेगा। भाषा और शब्द के प्रति लगाव को हम रूपवादी नहीं कह सकते। अज्ञेय शब्द और भाषा पर नहीं अर्थवान शब्द पर बल देते है —"शब्द की अर्थवत्ता की खोज मे शब्द की ऐतिहासिक और अर्थ की सामाजिक परत दोनों निहित है।" अज्ञेय की तार सप्तक की कविताओ में भाषा बहुस्तरीय है। उनकी काव्य–भाषा में तत्सम–तद्भव शब्द एक ही पगत मे उठते–बैठते हैं। उनकी कविताओ मे सामासिक पदावली "अपलक–द्युति अनथक गति, बद्ध नियति/जो पार किए जा रही नील–मरू प्रागंण नभ का।" तो दूसरी तरफ 'रिरियाता कुत्ता', 'गोयठों के गंगामय अंबार' तथा 'सिहरते से पगु टुण्डे', 'नग्न–बुच्चे', 'दईमारे पेड़' भी है।

अज्ञेय और मुक्तिबोध तार सप्तक के कवियो में दो छोर पर हैं। भाव–बोध और संवेदना का धरातल भी दोनो का अलग–अलग है। इन दोनों की भाषा की

तुलना करते हुए मलयज लिखते हैं –– "मुक्तिबोध अपने वैयक्तिक अहम् को लेकर वाह्य जगत् मे कूद पडते और उस जगत् को ही एक अद्भुत बिम्ब लोक में रूपान्तरित कर देते है। इसके विपरीत अज्ञेय पहले अपने अनुभूति यत्र से उस बाह्य जगत् को अपने मनोमय लोक मे अवतरित करते है, फिर अपनी चयनधर्मी काव्य दृष्टि से उसमे एक ऐसे वस्तुरूप का अन्वेषण करते है जो विशिष्ट संदर्भ जनित अनुभूति की तात्कालिकता और तीव्र राग–बोध को वहन करते हुए भी व्यापक भावबोध के भीतर–प्रतीक स्तर पर अतिक्रमित हो जाता है। इसलिए अज्ञेय का भाषा प्रयोग उनके भाव लोक की अन्तरग, हलचल, रचनाक्रिया की अकुलाहट का पता नहीं चलने देता, एक मर्यादित एवं सश्लिष्ट अनुभव बध का परिचय अवश्य देता है।"[४०] अज्ञेय और मुक्तिबोध की काव्य भाषा का यह फॉक वस्तुतः दो भावाभिव्यक्ति की भंगिमा की फॉक है, दो भाव–बोध के प्रकटीकरण का अतर है। अज्ञेय की भाषा में जहाँ एक तरह की तटस्थता मिलती है। वहाॅ मुक्तिबोध की भाषा मे एक तरह से काव्य प्रवाह मे कूद पडने और आर–पार जाने की अकुलाहट मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद हम कह सकते हैं कि तार सप्तक के कवियों की काव्य–भाषा सामान्य–जनजीवन और बोल–चाल की भाषा रही है। छायावादी काव्य–भाषा से मुक्ति के लिए तार सप्तक के कवि कृत संकल्प से दिखते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि उनकी कविताओ पर पूर्ववर्ती कवियों की काव्य–भाषा का कोई प्रभाव नहीं है। अज्ञेय और नेमिचंद्र पर आंशिक रूप से छायावादी पदावली की छाया देखी जा सकती है। मुक्तिबोध की काव्य–भाषा में एक अनगढ़ सुकोमलता अथवा खुरदुरी मुलायमियत निश्चय ही दीख पड़ती है। बावजूद इसके उनकी भाषा इकहरी और सपाट नहीं है। उसमें कई अन्तर्ध्वनियाँ लिपटी रहती हैं। भारत भूषण अग्रवाल

की भाषा सपाट और एक सीमा तक कृत्रिमता लिए हुए है। गिरिजा कुमार माथुर शब्द–सजग कवि है। भाषा को लेकर उनमे एक सतर्क छटपटाहट है। यह सतर्क छटापटाहट ही कभी–कभी उनकी अभिव्यक्ति मे आडे आता है। माचवे की भाषा प्रयोगधर्मी है। वे अपनी मराठी पृष्ठभूमि को मुक्तिबोध की तरह संकुचित होकर नहीं बल्कि खुलकर इस्तेमाल करते है। रामविलास शर्मा तार सप्तक के कवियों में ऐसे इकलौते कवि है जो काव्य–भाषा को लोकोन्मुख बनाते है। यही नहीं वे कहीं–न–कहीं केदारनाथ अग्रवाल की कविताओ से कुछ–न–कुछ दीक्षा ग्रहण करते है।

(ii) बिम्ब :

हिन्दी आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संभवत. ऐसे सर्वप्रथम आलोचक हैं जो कविता मे बिम्ब प्रयोग की चर्चा करते है। किन्तु उन्होने बिम्ब को जिस अर्थ मे ग्रहण किया है, उस अर्थ मे आज के कवि ग्रहण नहीं करते। आचार्य शुक्ल का मानना है कि "काव्य मे अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। यह विम्ब ग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय ही हो सकता है।"[४१] आचार्य शुक्ल मानते है कि "बिम्ब ग्रहण वहीं होता है जहॉ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओ के अग–प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आस–पास की परिस्थिति का परस्पर सष्लिष्ट विवरण देता है।"[४२]

तार सप्तक मे सर्वप्रथम प्रभाकर माचवे ने आधुनिक अर्थो में बिम्ब की चर्चा की है। माचवे लिखते हैं कि "हमारी कविता में पाये जाने वाले अधिकांश कल्पना चित्र या बिम्ब (इमेज) बच्चो से निरे शाब्दिक सहस्मृत या परंपरागत होते हैं। इन शाब्दिक साहचर्यात्मक और पारस्परिक बिम्बो की बजाय हमें राग और ज्ञान से पूरित ऐन्द्रिय आवेगाश्रित और अभिजात बिम्बों की सृष्टि करना है।"[४३] माचवे अपने उपर्युक्त कथन

मे बिम्ब के महत्व को रेखाकित मात्र करते है। लेकिन बिम्ब पर व्यवस्थित बातचीत केदारनाथ सिह के तीसरे सप्तक के वक्तव्य से शुरू हुई। केदारनाथ सिह मानते हैं कि ''बिम्ब विधान का सबध जितना विषय–वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है। रूप को सक्षिप्त और दीप्त बनाता है। एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बो के आधार पर ही की जा सकती है।''[४४] तार सप्तक की पूर्ववर्ती कविता मे सौंदर्य भावना अमूर्त थी। उसके बाद राजनीति और साहित्य की परिस्थितियॉ कुछ ऐसी हुयीं कि सारे बौद्धिक और सौदर्यात्मक मूल्य सदिग्ध हो उठे। यदि कुछ निश्चित था तो कवि का सौंदर्य बोध। यही कारण है कि तार सप्तक के सभी कवि बिम्ब रचना में सफल हुये है।

मुक्तिबोध की कविता मे चमकदार छोटे–छोटे बिम्बो की खोज थोडी मुश्किल हैं। उनके यहाँ पूरी कविता ही बिम्ब बनकर उभरती है। 'दूर तारा', 'सृजन क्षण' उनकी बिम्ब प्रधान कविताएँ हैं।

नेमिचन्द्र जैन की कविताओ मे बिम्ब प्राय स्वतत्रता रूप से नहीं हैं। उनकी कुछ कविताएँ मुक्तिबोध की कविताओं की तरह अपने आप में एक बिम्ब हैं। 'अनजाने चुपचाप' कविता में ऑखों के ऊपर गिर रही लटों को हटाने का एक बिम्ब देखा जा सकता है :

> "किस रजनीगन्धा के मद से लदा लबालब
> भरे हुए उन चंचल नयनों के ऊपर से
> हटा–हटा देती हो वे केश हठीले।"
>
> (–'अनजाने चुपचाप')

नेमिचन्द्र जैन की कविताओ में अनुभूतियो के विरोध से निर्मित प्रेम के कई

बिम्ब देखे जा सकते है।

भारत भूषण अग्रवाल की कविताओ मे बिम्ब कम है। कुछ एक कविताओ मे दृश्य बिम्ब मिलते है।

'फूटा प्रभात' कविता में, "प्राची का अरूणाभ क्षितिज मानो अबर की रस्सी में

फूला कोई रक्तिम गुलाब

रक्तिम सरसिज सा

धीरे--धीरे ले फैल चली

आलोक रेख।"

'जागते रहो' कविता मे भी इसी तरह के दृश्य बिम्ब देखे जा सकते हैं।

प्रभाकर माचवे की कविता मे दृश्य और श्रव्य बिम्बो की अधिकता है। श्रव्य बिम्बों मे ध्वनि और नाद के द्वारा वे सौदर्य का इच्छित प्रभाव पैदा करते है। हालाकि उनके ये बिम्ब छायावादी कविता मे आए हुए बिम्बों की याद दिलाते है। विशेषकर निराला के श्रव्य बिम्बो की। प्रभाकर माचवे की 'दृष्टि' कविता में आए हुए श्रव्य बिम्ब को देखा जा सकता है --

"झरर--झरर झा झा

ये सघर्षातुर झडियॉ

या झन--झन बजती--सी कड़ियॉ।"

या इसी कविता में 'ठहर ठहर' कर बाढ़ आने का बिम्ब भी ध्वनि माध्यम से अनूठा प्रभाव पैदा करता है।

गिरिजा कुमार माथुर की कविताओ में अकेलेपन या सन्नाटे के बिम्ब उभरकर आते हैं। इनके कुछ बिम्ब देखे जा सकते हैं --

"सूनी आधीरात

चॉद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से

मन्द चॉदनी पीता लम्बा कुहरा

सिमट–लिपटकर।" रेडियम की छाया

गिरिजा कुमार माथुर के बिम्बो के बारे मे केदारनाथ सिह की मान्यता है कि "माथुर के बिम्ब पाठक के मन पर आघात नहीं करते। उनमे एक स्थिति शीलता है।

रामविलास शर्मा उसी मूर्त विधान को सार्थक मानते हैं जो भावो से अनुप्राणित हो, जिसमे सहज इन्द्रिय बोध का निखार हो। उनकी कविताओ की पृष्ठभूमि ग्रामीण होने के कारण बहुत सारे ग्रामीण जीवन के बिम्ब प्रकृति रूपेण आते हैं। दिवास्वप्न मे 'वर्षा से धुलकर निखर उठा नीला–नीला आसमान या 'शारदीया' कविता मे 'सोना ही सोना छाया आकाश में' इसी तरह के बिम्ब है–––

तार सप्तक की कविताओ मे सर्वाधिक स्वतंत्र बिम्ब उसके सम्पादक अज्ञेय की कविताओ मे मिलते है। अज्ञेय की बिम्ब योजना पर 'मुक्त–अनुषंग' पद्धति प्रभावी है। 'सावन मेघ' या 'उषाकाल' की भव्य शान्ति शीर्षक कविताओं मे आए हुए एक दूसरे से असबद्ध चित्र वातावरण के आधार पर सार्थक बिम्बों की रचना करते हैं। यहॉ 'उषःकाल की भव्य शान्ति' कविता का एक बिम्ब देखा जा सकता है :

"दूर किसी मीनार क्रोड से मुल्ला का

एक रूप पर अनेक भावोद्दीपक

गम्भीर आडहाडन

'अस्सला तु खैरुम्मिनिन्नाड'

निकट गली मे

किसी निष्करण जन से बिन कारण पदाक्रान्त

पिलये की करूण रिरियाहट''

पूरी कविता मुक्त अनुषग पद्धति से सृजित किए गए बिम्बो से भरी है। इसके अलावा अज्ञेय के यहॉ यौन बिम्बो की भरमार है। यो बिम्ब मुक्त अनुषंगी नहीं है:

'घिर गया नभ–

उमड आए मेघ काले

भूमि के कम्पित उरोजो पर झुका–सा

विशद, श्वासाहत, चिरातुर

छा गया इन्द्र का नील वक्ष

बज्र–सा तडित–से झुलसा हुआ–सा।''

(–'सावन मेघ')

अज्ञेय के बिम्ब विधान के बारे में अशोक बाजपेयी ने कहा है ''एक बिम्ब पर दूसरे का ढेर लगाने की चतुराई, जबकि अक्सर उन्हे काव्यात्मक महत्त्व के स्तर पर थामने के लिए कोई आर्गेनिक संबध नहीं या अकेले लम्बी बिम्बो को फैलाने की हिकमत दोनो ही इस बात का प्रमाण हैं कि अज्ञेय को बुनियादी रूप से अपने नितान्त अकेले होने का अहसासा है और वे उससे कविता के माध्यम से परे जाने की कोशिश करता है।''[५५]

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि तार सप्तक के कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से ग्रहण न करते हुए स्वतंत्र रूप से बिम्ब निर्माण करने की कोशिश की और इस प्रक्रिया मे वे सफल भी हुए। पर कहीं–कहीं उनके यहाँ आए हुए बिम्ब पूरी कविता से विलग जान पडते है। अज्ञेय के यहॉ मुक्त आसंग तथा यौन–बिम्बों की

अधिकता है। माथुर की कविता मे अधिकतर उदासी के बिम्ब ही मिलते हैं। प्रभाकर माचवे अपने श्रव्य बिम्बो मे सफल है। मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन के यहाँ पूरी कविता ही बिम्ब के रूप मे आती है। रामविलास शर्मा के यहाँ ग्रामीण जीवन के बिम्ब मिलते हैं।

(iii) प्रतीक :

'आधुनिक हिन्दी कविता मे बिम्ब विधान' पुस्तक में पृष्ठ २६ पर डॉ० केदारनाथ सिह ने प्रतीको की चर्चा करते हुए कहा है कि "प्रतीक का एक पक्ष बराबर परम्पराजीवी और समाज स्वीकृति सापेक्ष होती है। कोई भी नया प्रतीक अपने अभिषिक्त अर्थ की प्राप्ति के लिए ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरन्तर प्रयुक्त रोते होते नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है।[८५] प्रतीक की चर्चा करते हुए अपने वक्तव्य मे अज्ञेय कहते हैं, "प्रतीक द्वारा कभी--कभी वास्तविक अभिप्राय अनावृत्त हो जाता है, तब वह उस स्पष्ट इंगित से घबराकर भागता है! जैसे बिजली के प्रकाश मे व्यक्ति चौक जाए।" तार सप्तक के कवियो मे अज्ञेय के अलावा किसी अन्य ने प्रतीक की चर्चा नहीं की है और न ही उसके प्रति जागरूक दिखते हैं। इसका कारण जो भी हो। डॉ० नामवर सिंह का कहना है कि "कवि अक्सर यथार्थभीरू तथा यथार्थ से अनभिज्ञ होने के कारण ही प्रतीकवादी बनता है। साथ ही यथार्थ को अज्ञेय रहने देना चाहता है, इसीलिए प्रतीकों का आवरण डालता है और आवरण के बावजूद वस्तु की ओर संकेत करना चाहता है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में स्वप्न और यौन प्रतीकों का निर्माण किया है। यौन प्रतीक, जहाँ 'सावन--मेघ' कविता में मिलता वहीं 'स्वप्न प्रतीक' 'चार कागजर' कविता मे।

बिम्बो की तरह ही मुक्तिबोध की सम्पूर्ण कविता एक विचार के प्रतीक के रूप में उभरती है। मलयज ने मुक्तिबोध को 'बिम्बात्मक प्रतीको का कवि' कहा है। नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल उलझी हुई मन:स्थिति के लिए पूरी कविता को ही प्रतीक का रूप दे देते हैं। भारत भूषण अग्रवाल के यहॉ लाल तारा मार्क्सवादी आस्था का, तो प्रभाकर माचवे के यहॉ कापालिक विद्रूपता का प्रतीक है। भारत—भूषण अग्रवाल के यहॉ मैं और मेरा पिट्ठू' मे 'पिट्ठू' मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्वप्नशीलता का प्रतीक बनकर आया है।

(iv) अलंकार :

अलकारों का प्रयोग काव्य की शोभा बढाने के लिए किया जाता है।[४७] तार सप्तक के कवियो की कविताओ को पढ़ने से लगता है कि उनकी कविता को अलंकारों की आवश्यकता नहीं है। तार सप्तक के पूर्व पत ने अपनी कविता के लिए अलकार के महत्व को नकारते हुए लिखा था ——

> तुम वहन कर सको जनमन में मेरे विचार
>
> वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलंकार

जिस अलकार को छायावाद ने अन्तिम दिनो में केचुल की तरह लगभग उतार दिया था और प्रगतिशील कवियो ने उस पर दैनन्दिन जीवन की धूल और राख का लेप लगाकर 'मिल की चिमनी' के ऊपर टाग दिया था, उस अलंकार तक जाने की 'तार सप्तक' कवियो को तो आवश्यकता और अलम् था। इनकी अभिव्यक्ति को सहायता देने मे नवीन उपमान ही काफी थे। प्रभाकर माचवे ने अलंकार विधान को आमूल बदलने की वकालत की। उन्होंने उपमान को माजने और रुपकों की कलई खोलने की बात करते हुए यह कहा कि "उत्प्रेक्षाए सचमुच भाव के उत्स से उत्प्रेरित

है या नहीं यह देखना होगा।"[४५] माचवे अलकारो से अधिक वैज्ञानिक और वैशेषिक होने की मॉग करते हुए कहते है, "निरे अलंकार साख्य से निरलकार काव्य रचना बेहतर है।"

'तार सप्तक' के सभी कवियो ने बदली हुई काव्य भूमि के अनुरूप उपमानो का प्रयोग किया है। रुढियो के लिए सघन बर्फ की कडी पर्ते,[४६] अहम् भाव के लिए कुकुरमुत्ता, दीन ऑखो के लिए लालटेन, रिक्त वक्ष के लिए लकडी का खोखा, मस्तिष्क के लिए तेल की मशीन[४९] भोली–भाली ऑखो के लिए नीबुओ की फॉके[५१] जाडे की धूप के लिए सेमल की हल्की रुई,[५२] बिजली के बल्ब के लिए लाल–लाल लहू की बूँद[५३] छन्द के लिए शैतान की आंत और चाद के लिए 'ताप क्षीण कापालिक'।[५४]

(v) छन्द :

छायावादी कवियो मे विशेषतः निराला ने मुक्त छद की परंपरा का नवोन्मेष किया और उसे लोकप्रिय बनाया आगे बढ़ाया। आधुनिक हिन्दी कविता में एक तरह से निराला ने ही कविता को निरीपद्यात्मकता के बन्धन से मुक्त किया वहीं पत ने कविता के 'छद के बन्ध' को खोलने की कोशिश की। छद मुक्ति की इस प्रक्रिया में छायावादियो ने जहॉं कुछ नये छंद बनाए वहीं अतुकान्त कविताओं की रचना भी शुरू हुई। छायावादी कवि मुक्त छद का प्रयोग कभी विकल्प के रूप में करता था, वहीं 'तार सप्तक' के कवियों ने मुक्त छद को ही अपनी स्वीकृति प्रदान की। 'जुही की कली' या प्रसाद की 'प्रलय की छाया में अन्त तक एक गहन अन्तर्लय, दूसरे तरह का छद बनाता भी था पर 'तार सप्तक' के कवियों का मुक्त छंद, छंद की रूढ़ि से सर्वथा मुक्त है।

'तार सप्तक' मे रामविलास शर्मा, पभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर और अज्ञेय ने छद के काव्यगत प्रयोग पर विस्तार से विचार किया है। प्रभाकर माचवे निराला द्वारा प्रयुक्त मुक्त विषम चरण वर्तनी, अतुकान्त अक्षर मात्रिक छन्द पर आश्रित तारात्मक पद रचना को श्रेयस्कर मानते है। मुक्त छंद के क्षेत्र में निराला प्रभाकर माचवे के आदर्श हैं। वे मानते है कि मुक्त छंद मे, छंद की गति को निर्धारित किया जाना चाहिए। हिन्दी के छंद और लोकगीतो के लय के अलावा माचवे ने सॉनेट, रूबाई आदि का सफल प्रयोग किया है।

गिरिजा कुमार माथुर ने 'तार सप्तक' के वक्तव्य मे छन्द संबंधी अपनी मान्यताओ का विधिवत उल्लेख किया है। वे कविता मे मुक्त छन्द को पंसद करते है और मुक्त छन्द मे अधिकतर विरामान्त (End Stop एण्ड स्टाप) पक्तियॉ नहीं रखते हैं, बल्कि धारावाहिक (Run on) ही रखते है। वे मानते हैं कि इसी कारण वे सगीत प्रधान गीत सभव कर सके हैं।

मुक्त छद को वे वार्षिक और मात्रिक दो भागों मे विभक्त करते हैं। वे एक कविता मे एक ही प्रकार का मुक्त छंद के प्रयोग के पक्ष पर है। धारावाहिनी पंक्तियों मे भी प्रथम पक्ति का अर्द्ध विराम द्वितीय पंक्ति को लेने का नियम बनाते हैं। यही नही वे शब्द की आत्मा स्वर ध्वनि को मानते हैं और इसी नियम को लेकर वे स्वर ध्वनियों का मूल्याकन भी करते है। कविता के विरामो को लेकर कितने ही प्रकार के मुक्त छद पक्तियाँ उन्होने निर्मित की हैं। 'आज हैं केशर रंग रंगे वन' इस छंद का उदाहरण है.

"आज हैं केशर रग रंगे बन

रजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी

केसर के वसनो मे छिपा तन

सोने की छॉरसा

बोलती ऑखो मे

पहिले वसत के फूल का रग है।''

रामविलास शर्मा की कविता 'दारा शिकोह' रूबाई छद में लिखी गई है, जिसकी पक्तियो का निर्माण घनाक्षरी की पक्तियो को बीच से तोडकर किया गया है। राम विलास जी मानते है कि, ''इस सोलह अक्षर की पक्ति मे मैंने सॉनेट और बलैक वर्स (अतुकान्त छद) लिखा है और कई कविताए इस पंक्ति को तोडकर वार्णिक मुक्त छद मे लिखी गई है। एक दूसरे ढग का मुक्त छद मात्रिक है।''[५५] इसके अलावा २१–२१ मात्राओ के आधार पर उन्होंने 'शारदीया' तथा लोकगीतों की शैली के आधार पर 'सत्यम् शिवं सुन्दरम्' की रचना की है।

अज्ञेय छन्द के आन्तरिक अनुशासन को मानते हुए छन्द के मात्रिक बन्धन को महत्व नही देते। वे मानते है कि वह छद की अर्थषत्ता को कमजोर करता है। छन्द के अनुशासन को स्वीकार करने का कारण अज्ञेय बतलाते हैं कि वही शक्ति का स्रोत है तथा अर्थवत्ता को गहराई देता है। भारत भूषण अग्रवाल अपनी कविताओं मे सॉनेट और रुबाई छदो का प्रयोग करते है। उनकी कविता 'अपने कवि से' तथा 'मसूरी के प्रति' मे सॉनेट तथा मिलन' में रुबाई छंद का प्रयोग है। नेमिचन्द्र जैन की कविता में छंद का अभाव दिख पडता है। फिर भी 'आगे गहन अंधेरा में' सॉनेट की परछायी दिखती है।

कुल मिलाकर 'तार सप्तक' के कवियो ने छायावाद की छन्द परंपरा को आगे बढाते हुए कवित्त सवैया को तोडकर छदो को नये रूपों मे ढाला और सॉनेट रुबाई

जैसे हिन्दी मे प्रचलित छन्दों को भी अपनाया। लोक गीतो की लय के आधार पर कविताए लिखीं और अपनी अभिव्यक्ति मे डैश (–) और (( )) कोष्ठको तक के प्रयोग किए। हम कह सकते है छद की दृष्टि से 'तार सप्तक' के कवि काफी जागरूक है।

(vi) लय :

वर्तमान हिन्दी कविता में लय को लेकर विद्‌वानो में मतैक्य नहीं है। हिन्दी के बाहर भी जो कवि चिन्तक है वे भी इस विषय पर एकमत नहीं हैं। ब्रेख्त कहते है "मुझे तुक अनुपयुक्त लगती है। क्योंकि वह आसानी से कविता को स्वय पूर्ण बना देती है। नियमित लये भी अपनी सपाटता के चलते गहरायी से प्रभावित नहीं करतीं और वे बात को बहुत फैला भी देती है।"[५६] तो दूसरी ओर ब्लादीमीर मायकोवस्की का कहना है कि "लय कविता की मूल शक्ति तथा ऊर्जा है।"[५७]

'तार सप्तक' में किसी भी कवि ने सैद्धान्तिक रूप से लय की चर्चा नहीं की है। सिर्फ गिरीजा कुमार माथुर ने कविता के सगीत पक्ष पर विचार किया है। मुक्तिबोध की 'तार सप्तक' की कविताओ मे लय का व्यवस्थित प्रयोग नहीं मिलता। सगीत प्रेम के कारण नेमिचन्द्र जैन की कविता में आन्तरिक लय दिखाई पड़ता। शब्दो की आवृत्ति से भी उन्होने कविता को लयात्मकता दी है। 'जिन्दगी की राह कविता' मे इसी तरह का प्रयोग किया गया है। भारत भूषण अग्रवाल तथा प्रभाकर माचवे की कविताओ मे एक दूसरे तरह की लयात्मकता है, जो तुकों के आग्रह से पैदा हुई है। प्रभाकर माचवे जहॉ लोक धुनों की लय का इस्तेमाल करके 'गा रेगा हरवा है, दिल चाहे वही तान। खेतों मे पकाधान लिखते हैं तो गिरिजा कुमार माथुर कविता मे सगीत उत्पन्न करने के लिए स्वर ध्वनियों का प्रयोग करते हैं। राम विलास शर्मा की कविताओ मे लय का प्रवाह बहुत बेगवान है। कवि शीर्षक कविता में शब्द

एक–एक दूसरे को ठेलते हुए धारा प्रवाह गति से आगे बढते है। राम विलास जी ने गीत की लय पर 'चॉदनी' शीर्षक कविता लिखी है और सत्य शिव सुन्दरम् लोक गीतो की लय पर।

अज्ञेय की कविताओ मे भी बातचीत की लय का प्रयोग है। लेकिन इसे हम गद्यात्मक लय नहीं मान सकते। यह जरुर है कि इसे हम उनकी कविताओ का आन्तरिक प्रवाहमान ले।

'तार सप्तक' की कविताओ मे अन्य अनेक काव्य रूपो का प्रयोग हुआ है। इनमे गीत, ग्राम गीत, मुक्तक, सॉनेट रूबाई आदि प्रमुख प्रयुक्त काव्य रूप हैं। 'तार सप्तक' के गीत छायावादी गीतो से भिन्न हैं और मुक्तक रीतिकालीन मुक्तक नहीं हैं। काव्य रूप की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है मुक्तिबोध की लंबी कविता तथा उसकी नाटकीयता।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कविता मे 'तार सप्तक' के कवियो ने नयी भाषा, बिम्ब प्रतीक, उपमान, छन्द, आदि काव्य रूपो के क्षेत्र मे नए प्रयोग किए और हर सभव इनका सिद्धान्त निरूपण भी किया। इस सिद्धान्त निरूपण और काव्य सृजन मे आधुनिक हिन्दी कविता मे एक नए सौदर्य शास्त्र को जन्म दिया। 'तार सप्तक के कवियो की भाषा प्राय. लोक भाषा से प्राण तत्व पाती रही है। अज्ञेय और नेमिचंद्र जैन की कविताओ पर छायावादी पदावली का प्रभाव देखा जा सकता है। गिरिजा कुमार माथुर शब्दों के मितव्यी उपयोग के लिए लक्षित किए जा सकते हैं। वहीं भारत भूषण अग्रवाल प्राय. सपाट भाषा मे लिखते हैं। मुक्तिबोध की भाषा रूखी कोमलता लिए हुए है। 'तार सप्तक' के कवियो ने बिंब निर्माण में भी अपने कौशल को दर्शाया है। अज्ञेय के यौन एव स्वप्रबिब, माचवे के श्रव्य एवं दृश्यबिंब तथा

मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन की सम्पूर्ण कविता ही एक बिब के रूप मे उभरती है। प्रतीक निर्माण मे अज्ञेय के अलावा 'तार सप्तक' का कोई कवि क्रियाशील नहीं लिखता। उपमानो का प्रयोग 'तार सप्तक' मे जहा भी हुआ है परंपरा से इतर है। 'तार सप्तक' के कवियो ने प्राचीन छन्दो को तोडकर नये छद बनाए तो दूसरी तरफ हिन्दीतर छदो रुबाई और सोनेह का प्रयोग भी किया। भावाभिव्यक्ति के लिए कोष्ठको और डैशो का इस्तेमाल भी इन कवियों ने किया। छद के प्रति सर्वाधिक सजग गिरिजा कुमार माथुर है तो तुको के प्रयोग मे माचवे। 'तार सप्तक' के अधिकांश कवियों ने लोक गीतो की लय को अपनाया है और काव्य रूप की दृष्टि से मुक्तक, गीत, ग्रामगीत, सॉनेट, रूबहि आदि इस्तेमाल किया है।

संदर्भ

१ विजयदेव नारायण साही की पुस्तक 'छठवॉ दशक' पृष्ठ स २७० से उद्धत हिन्तुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, प्रथम सस्करण १९८७।

२ पूर्ववत् – पृष्ठ स २७५।

३ पूर्ववत् – पृष्ठ रा २७७।

४ पूर्ववत् – पृष्ठ २७८ से उद्धृत।

५ पूर्ववत् – पृष्ठ २७८।

६ पूर्ववत् – पृष्ठ २८४।

७. पूर्ववत् – पृष्ठ ३०५।

८ पूर्ववत् – पृष्ठ ३१५।

६ मुक्तिबोध रचनावली – भाग–५ सं. नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन। पेपरबैक सस्करण १९८५, पृष्ठ – १०७।

१० मुक्ति बोध, वक्तव्य, 'तार सप्तक' स अज्ञेय भारतीय ज्ञान पीठ।

११ पूर्ववत् 'ऑखे खोल' कविता से।

१२ नेमिचन्द्र जैन जिन्दगी की राह, 'तार सप्तक' से।

१३ पूर्ववत्।

१४ पूर्ववत् उन्मुक्त कविता।

१५ पूर्ववत् उन्मुक्त वक्तव्य भारत भूषण अग्रवाल।

१६. गिरिजा कुमार माथुर, दो पाटों की दुनियां– 'तार सप्तक।

१७ अज्ञेय – सावन मेघ – 'तार सप्तक'।

१८ अज्ञेय – वक्तव्य – 'तार सप्तक'।

१९ नेमिचद्र जैन, बदलते परि प्रेक्ष्य, रा क. पु. दिल्ली पृष्ठ ६६।

२० मुक्तिबोध – रचनावली पृष्ठ २६ स. नेमिचद्र जैन।

२१ नानक सिह– सपादकीय आलोचना वर्ष १८. नवाक ६ पृष्ठ।

२२ ब्रतोल्त ब्रेख्त की कविताए, अनुवाद – हरीशचद्र अग्रवाल।

२३ मुक्तिबोध –'तार सप्तक' वक्तव्य।

२४ भारत भूषण अग्रवाल – 'तार सप्तक' वक्तव्य।

२५ मुक्तिबोध एक लाल वक्तव्य– 'तार सप्तक'।

२६ राम विलास शर्मा – कार्य क्षेत्र 'तार सप्तक'।

२७ अज्ञेय जनाह्वान 'तार सप्तक'।

२८ मुक्तिबोध रचनावली पृष्ठ – ११४।

२९. मुक्तिबोध नाश देवता, 'तार सप्तक'।

३० भारत भूषण अग्रवाल . सीमाएं एक आत्मस्वीकृति, तार सप्तक।

३१ प्रभाकर माचवे वह एक, 'तार सप्तक'।

३२ गिरिजा कुमार माथुर, देह की दूरिया, 'तार सप्तक'।

३३. मुक्तिबोध रचनावली – पेपर बैक सस्करण १९८५ पृष्ठ – ४१।

३४ मुक्तिबोध 'पूजीधादी समाज के प्रति' कविता, 'तार सप्तक।

३५. नेमिचन्द्र जैन, वक्तव्य, 'तार सप्तक'।

३६ मलयज – कविता से साक्षात्कार, पृष्ठ रा १५०, सभावना प्रकाशन हापुड़।

३७ मुक्तिबोध – एक आत्मवक्तव्य, 'तार सप्तक'।

३८ नेमिचद्र जैन – अनजाने चुपचाप, 'तार सप्तक'।

३९ भारत भूषण अग्रवाल – अपने कवि से 'तार सप्तक'।

४० मलयज – कविता से साक्षात्कार, सभावना प्रकाशन, हापुड़ स. १६७६ पृष्ठ १५० ।

४१ आचार्य रामचद्र शुक्ल – कविता क्या है? चिन्तामणि भाग – १ पृष्ठ १४५ ।

४२ पूर्ववत् , पृष्ठ १४८ ।

४३ प्रभाकर माचवे – वक्तव्य 'तार सप्तक' ।

४४ केदार नाथ सिह तीसरा सप्तक वक्तव्य सस्करण ८४ पृष्ठ स १२८ ।

४५ अशोक वाजपेयी, फिलहाल, राजकमल प्रथम संस्करण १६८२ पृष्ठ ७७ ।

४६ केदारनाथ सिह नयी कविता का बिब विधान ।

४७ काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते । – काव्यादर्श सस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग–२, १६३८, जवाहरलाल जैन, नवलगढ़ ।

४८. प्रभाकर माचवे वक्तव्य 'तार सप्तक' ।

४६. भारत भूषण अग्रवाल ।

५०. मुक्ति बोध ।

५१ प्रभाकर माचवे ।

५२ गिरिजा कुमार माथुर ।

५३ राम विलास शर्मा ।

५४ अज्ञेय ।

५५ राम विलास शर्मा वक्तव्य 'तार सप्तक' छठा सस्करण १८६ ।

५६ ब्रेख्त ।

५७ मायकोवस्की – लेखन कला और रचना कौशल । अनुवाद प्रगति प्रकाशन १६७७, पृष्ठ –

अध्याय - पांच

'तार सप्तक' कवियों के प्रथम व द्वितीय संस्करणों के वक्तव्य -

"पुरानी मध्ययुगीन मूल्य दृष्टि भावुकता पूर्ण रोमान कल्पना प्रधान सास्कृतिक बोध तथा धरातलीय उदारवाद (जिसे हिन्दी में मानवतावाद अथवा तथा कथित 'भारतीय परपरा' की सज्ञा दी जाती है) के धुँध को इस नयी सवेदनशीलता और वस्तुपरक सूक्ष्म सौदर्य दृष्टि ने सदा के लिये मिटा दिया है। सामाजिक दायित्व के महत् की ओट में नकली मागलिकता और निरीह शुभाशंसा का जो आडम्बर रचा जा रहा था और अब ही तुरत सिद्धियो के लिये कभी–कभी रचा जाता है, उस पाखण्ड की कलई भी नव काव्य की खरी तथा निष्ठापूर्ण क्रियाविधि पिघलाकर बहा चुकी है। माध्यम और उपकरणो की सकीर्ण रुढियॉ तोडकर उन्हे सहज अनुभूति के साथ संबद्ध किया गया है। संवेदना के सीमित और वर्गीकृत आधारों के स्थान पर सर्वथा अंतरंग एवं आत्मानुभूत प्रतिक्रियाओं को अधिक मूल्यवान मान कर कलात्मक वैभव के एक ऐसे असीमित और अनवलोकित क्षेत्र का उद्घाटन हो गया है। जिसका पूर्व कालीन कवियों को भान भी नहीं था।"

– गिरिजा कुमार माथुर

'पुनश्च' तार सप्तक द्वितीय 'स्करण।

(क) अन्विति या अन्तर्विरोधः कारण और विश्लेषण

'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण उसके पहले संस्करण के बीस वर्षों बाद प्रकाशित हुआ इन बीस वर्षों (१९४३–१९६३) में संकलित कवियों की मनो सरचना मे पर्याप्त विकास और परिवर्तन स्वाभाविक था। सामान्यत बीस वर्ष की एक पीढी मानी जानी है।' स्वाभाविक रूप से कविता मे भी एक नयी पीढी आ चुकी थी। दूसरा सप्तक प्रकाशित हो चुका था कविता की नदी मे बहुत सारा जल प्रवाहित हो चुका था। बाद मे आय हुए कवियो की नवीनता तथा सप्तक के कवियों की प्रौढता का अनुभव इन सबको मिलाकर इन कवियों की दृष्टियों में गहरायी के साथ–साथ परिवर्तन परिवर्धन अस्वाभाविक नहीं माना जायेगा। अज्ञेय स्वीकार करते हैं ''इन बीस वर्षों मे सातों कवियों की परस्पर अवस्थिति में विशेष अंतर नहीं आया है तब की संभावनाएं अब की उपलब्धियों में परिणत हो गयी हैं।' अज्ञेय के कथन मे भी आत्म विश्वास नहीं अनुमान पर जोर अधिक है 'विशेष अतर' में ही यह निहित है कि परिवर्तन हुआ। तब तक 'सप्तक के कवियों का विकास अपनी–अपनी अलग दिशा में हुआ है। सृजनशील प्रतिभा का धर्म है कि वह व्यक्तित्व ओढ़ती है। यह व्यक्तित्व ओढने की स्थिति अलग–अलग कवियो पर भिन्न–भिन्न तरीके से प्रभावी होता है। यहां ध्यान रखना होगा कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन के समय देश आजाद नहीं था, और प्रगतिवाद के विरोध मे सघर्ष भी तेज नहीं था। लेकिन १९६३ तक प्रगतिवाद के विरोध मे अच्छी खासी गिरोह बंदी हो चुकी थी। आजादी प्राप्त किये हुए एक दौर बीत चला था। नेमिचन्द्र जैन अपने वक्तव्य में समाज में साहित्य की भूमिका को मानते हैं, अपने को राजनीति में क्रियात्मक रूप से सक्रिय तथा मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट कहते हैं, वहीं दूसरे संस्करण तक आते–आते उनकी

मार्क्सवाद सचालित 'राजनीति छूट ही नही गयी, उस क्षेत्र के सर्वव्यापी हीन सिद्धान्त और आदर्श हीनता के कारण अंधे हो गयी।[3] नेमिचद्र जैन की ही तरह भारत भूषण अग्रवाल की 'तार सप्तक' के प्रथम सस्करण में न केवल 'कम्युनिस्ट' के बल्कि 'मार्क्सवाद को उस समय के समाज के लिए रामबाण मानते थे। परन्तु इन्हीं बीस वर्षों मे 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण मे वे कहते हैं, "आज मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ। यही नहीं अब तो लगता है कि जब कहता था, तब भी नहीं था।" यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि इन दोनों कवियों में यह बदलाव क्यों आए? इस वैचारिक बदलाव को मात्र विचलन नहीं माना जा सकता, यह विशुद्ध रूप से तात्विक परिवर्तन है। इस परिवर्तन के कई कारण हो सकते हैं। स्वतत्रता के पूर्व का आदर्शवाद स्वतंत्रता के बाद अवसरवाद मे बदल गया। सत्ता और व्यवस्था से एक दूसरे तरह की प्रगाढता बनी। एक दूसरा सामंजस्य बना। यहीं यह भी ध्यान देना होगा, प्रश्न अपना स्वरूप बदल चुका था। 'तार सप्तक' के कवियो के बीच तथा समाज के भीतर व्याप्त निजी सबधो मे भी काफी परिवर्तन तथा तनाव आ गया था। दूसरे सस्करण मे आजादी के बाद की साहित्यिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों के तनावों और दबाओं को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है।

'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण में कुछ बदलाव विकास के तथा कुछ परिवर्तन के रूप में लक्षित किये गये। कुछ कवियों के निजी अन्तर्द्वन्द्व थे कुछ बैचारिक अन्वितियाँ थी। तो कुछ में एक सामूहिकता भी थी। पहले उन परिवर्तनों पर ध्यान देना होगा जो एकाधिक कवियों में एक साथ आये। 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण तक कुछ कवियों का मार्क्सवाद और कम्युनिज्म के प्रति मोह टूट चुका

था। जबकि पहले सस्करण के वक्तव्य मे इन कवियों ने मार्क्सवाद के प्रति आस्था जताई थी। इन कवियो मे भारत भूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन प्रमुख है। जहाँ पहले सस्करण मे नेमिचद्र जैन अपने को राजनीति मे क्रियात्मक रूप से सक्रिय तथा मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट कहते है, वहीं दूसरे सस्करण तक आते–आते उनकी मार्क्सवाद सचालित 'राजनीति छूट ही नहीं गयी, उस क्षेत्र के सर्वव्यापी हीन सिद्धान्त और आदर्श हीनता के कारण अरूचि हो गयी।[3] नेमिचद्र जैन की ही तरह भारत भूषण अग्रवाल भी 'तार सप्तक' के प्रथम सस्करण मे न केवल 'कम्युनिस्ट' थे बल्कि 'मार्क्सवाद को उस समय के समाज के लिए रामवाण मानते थे। परन्तु इन्हीं बीस वर्षों मे 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण में वे कहते है, "आज मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ। यही नहीं अब तो लगता है कि जब कहता था, तब भी नहीं था।" यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि इन दोनों कवियो मे यह बदलाव क्यों आए? इस वैचारिक बदलाव को मात्र विचलन नहीं माना जा सकता, यह विशुद्ध रूप से तात्विक परिवर्तन है। इस परिवर्तन के कई कारण हो सकते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व का आदर्शवाद स्वतंत्रता के बाद अवसरवाद में बदल गया। सत्ता और व्यवस्था से एक दूसरे तरह की प्रगाढता बनी। एक दूसरा सामजस्य बना। यहीं पर भी ध्यान देना होगा, कि १६४३ का समय १६३६ के बहुत पास था मात्र सात वर्ष दूर। तब तक प्रगतिवाद का जादू जरा अधिक गहरा था। लेकिन १६६३ तक यह सब धूल धूसरित हो चला था। मार्क्सवादी प्रभाव पूरे हिन्दी साहित्य से कम हो चला था, कवि ही नहीं कहानी तक मे एक नया सूत्रपात हो चला था। इन सारी स्थितियों में मार्क्सवाद में रोमैटिक रूप से जुडे किसी भी कवि लेखक का उसे छोड जाना या उसे मोहभंग की स्थिति तक पहुँच जाना अस्वाभाविक नहीं है। १६४५ तक प्रगतिवादी आंदोलन

उभार पर था पर बाद मे आन्तरिक जकडबदी और कठमल्लेपन तथा बाहर के प्रहारो के चलते वह अपनी काति खो चुका था। उससे बहुत गहरे जुडे दोनो कवियों पर इस स्थिति का प्रभाव पडना सहज था। यदि नेमिचद्र जैन या भारत भूषण अग्रवाल ने इस परिवर्तन को महसूस किया तो इसे एक तात्विक परिवर्तन की तरह स्वीकार किया जाना चाहिए।

इस वैचारिक परिवर्तन के अतिरिक्त दूसरे सस्करण तक कई कवियो यहा तक कि उसके सपादक अज्ञेय तक का इतिहास और परम्परा के प्रति दृष्टिकोण काफी हद तक बदल चुका था। १६४३ के समय तक लगाव १६६३ तक बहुत से स्तरों पर भिन्न हो चला था। इसे हम अज्ञेय के इतिहास और परंपरा में आये हुये लगाव के प्रति हुये परिवर्तन में देख सकते हैं। अपने पुनश्च में वे मानते हैं। "जो सदैव है और रहेगा वह भी नित्य है और जो निरंतर बदलता रहता है वह भी नित्य नया है। अनित्य वही है जो एक बार बदलकर फिर नहीं बदलता। काल के साथ हमारा सनातन काल से दोहरा सबंध रहा है। यह भारत की परंपरा की एक महत्वपूर्ण कडी है। जहा यह दोहरा बोध नहीं है वहां 'युगबोध' भी नहीं है और शाश्वत का बोध भी नहीं है।[५] प्रथम संस्करण मे अज्ञेय जहा राहों के अन्वेष पर जोर दे रहे थे वहीं अब वे परंपरा और उसके एतिहासिक संबंध को लेकर चिंतित हो उठते है। यही नहीं प्रथम संस्करण के वक्तव्य में जहा वे प्रेम और यौन वर्जना के विषय मे मन में कुछ सफाई देने का भाव रखते थे। दूसरे सस्करण तक आते–आते यह सफाई देने का भाव भी जाता रहा। बल्कि इसके स्थान पर वे "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है"[६] के कारणों की विधिवत पडताल करते दिखते हैं।

१९४३ तक जिन वर्जनाओ और ग्रन्थियों को लेकर एक कवि ऊहापोह की स्थिति मे था। वही १९६३ तक वह इसे समाज का एक आवश्यक अग मान लेता है और इसे मध्य वर्ग मे विशेष रूप से निम्न मध्य वर्ग मे पाता है। अज्ञेय लिखते हैं "वर्जनाए और ग्रन्थियां न समाज के उपर के स्तरों मे उतनी जटिल होती हैं न निचले स्तरो मे जितनी की बीच के अधिभाग मे।"[३] इसका कारण अज्ञेय बताते है कि "दोनो छोर पर स्वच्छदता अधिक होती है यद्यपि भिन्न–भिन्न कारणों से। अभिजात्य वर्ग सस्कृत है क्योंकि सस्कारों मे मजा हुआ है साथ ही सुविधा सपन्न भी इसलिये उसमें वैसा दमित तनाव नहीं है।"[४] निम्न वर्ग अथवा लोक वर्ग को वर्जनाओ और ग्रंथियो से मुक्त होने के लिए अज्ञेय मानते हैं कि यह वर्ग लोक संस्कृति की सहजता मे पला है जहां उसे सुविधाएं नहीं मिलती वहां यथार्थ के संबंधों की सहजता ही स्वस्थ रखती है। इन दोनो के बरक्स मध्य वर्ग के प्रति वर्जनाओं और ग्रंथियो के पुंज के संदर्भ मे अज्ञेय की धारणा और पुष्ट हुयी है। अज्ञेय मानते हैं "बीच का तबका ही सबके अधिक रूढ़िग्रस्त होता है क्योकि वही सामाजिक मर्यादाओ का निर्वाह करने और कराने का उत्तरायित्व अपने ऊपर ओढ़ लेता है।"[५] उसके रूढिग्रस्त होने मे और वर्जनाओं के पुज बनने में अज्ञेय उसकी साक्षरता और यत्किंचित शिक्षा को भी उत्तरदायी ठहराते हैं। और मानते हैं कि साक्षरता और यत्किचित शिक्षा "उसे वह संस्कारित नहीं देती जिसमें या तो मंजाव का सहज स्वीकार उसे स्वस्थ रखे।"[६] इतिहास और परपरा के प्रति गिरिजा कुमार माथुर भी वर्तमान समस्याओं की अपेक्षा परंपरा और कहीं न कहीं आधुनिकता को भारतीय संस्कृति या भारत की परंपरा के जोड़ने की अनिवार्यता महसूस करते हैं वे कहते हैं "आधुनिकता को मैं वैज्ञानिक प्रक्रिया से उद्भूत मूल्य दृष्टि मानता हूँ

इसीलिए आधुनिकता के बाह्य आरोप या उसकी अनुकृति को उतना ही दोषपूर्ण समझता हूँ जितना स्वीकृत रूढियो का अनुकरण।"[११] यहा ध्यान देने योग्य है कि उनके पहले सस्करण के वक्तव्य मे बाते मूलत कविता के 'अर्न्तर वाह्य' पक्षों तक सीमित थीं वहीं पुनश्च मे वे कविता की सामाजिकता युगीन चेतना नव काव्य धारा के आरम्भ होने के कारणों लेखको पर पहले वाले साहित्यतर दबावों में कार्य करने के प्रतिफल की पडताल करते है। १९४३ से १९६३ तक के बीस वर्षों में गिरिजा कुमार माथुर के विकास को हम उनके इन बदले हुये मुद्दो पर अपने को केंद्रित करने से देख सकते है। पहले सस्करण मे इन बातो के न होने का कारण गिरिजा कुमार माथुर बताते हैं कि वे "पहले सस्करण में मैं पूरा वक्तव्य नहीं दे सके थे।"[१२] साहित्येतर दबाव में आकर रचना करने पर गिरिजा कुमार माथुर मानते हैं कि "यदि लेखक किन्हीं साहित्येतर दबाव मे आकर स्वानुभव साक्ष्य विहीन सत्य स्वीकार करता है तो वह 'कविता' नहीं एक गैर ईमानदार 'पद्य वस्तु' की रचना ही करेगा।"[१३] गिरिजा कुमार माथुर साहित्येतर दबावो को काव्य के लिये सबसे बड़ा और अमिश्र निकष मानते हैं। यहां यदि हम भारत भूषण अग्रवाल और नेमिचंद्र जैन के मार्क्सवाद से मोह भंग की उद्घोषणाओं को ध्यान में रखें तो इस 'किन्हीं साहित्येतर दबावों' को 'अमिश्र निकष' मानने के निष्कर्ष के कारणों को ठीक से समझ सकते हैं। यह किन्हीं साहित्येतर दबाव निश्चित रूप से प्रगतिशील लेखक संघ और मार्क्सवाद का ही दबाव है जिसके चलते कविता नहीं एक गैर ईमानदार 'पद्य वस्तु' की रचना [illegible] [illegible]। यही नहीं गिरिजा कुमार माथुर [illegible] प्रगतिवादी युग चेतना से सम्पूर्ण विच्छेद का बिन्दु मानते हैं।

राम विलास शर्मा अपनी कविताओं का छायावाद से गिरिजा कुमार माथुर

की तरफ विच्छेद न पाते हुये उसकी परपरा मे जाते है। पुनश्च मे वे लिखते हैं– 'तार सप्तक' में सकलित मेरी इन कविताओ का घनिष्ट सबध छायावादी कविता और उससे भी अधिक छायावादी कवियों से है।"[१४]

जहा पहले सस्करण के वक्तव्य मे राम विलास जी अनेक कविताओं की प्रेरणा पुस्तको से पाते रहे है वहीं पुनश्च तक आते–आते यह काव्य प्रेरणा सीधे व्यक्तियो और समाज तक चला गया है वे लिखते है "निराला के जीवन मे यथार्थवाद का अन्तरविरोध साक्षात प्रकट हुआ वही 'कवि' की विषय वस्तु है। उसमे रहस्यवाद का खण्डन करते हुये छायावाद के मानवतावादी मूल्यों को अपनाने का प्रयास भी है।"[१५] यहां रहस्यवाद का खण्डन और छायावाद के मानवतावादी मूल्यों को अपनाने का प्रयास राम विलास जी की समाज के प्रति उनकी सजगता को द्योतित करता है। पहले सस्करण के वक्तव्य में जहा वे प्रेम सबंधी कविताएं लिखने के बारे मे सोचते थे और यह मानते थे कि "जिसके हृदय मे प्रेम की नदी न बहे वह कवि ही क्या।"[१६] वहीं पुनश्च में वे मानते है कि "मनुष्य जिस हद तक कवि मनुष्य है वह भी सामाजिक जीवन के सदर्भ मे ही अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।"[१७] १९४३ से १९६३ के बीस वर्षो को रामविलास जी अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे देखते है। यहा वे अपने पहले सस्करण तक की अपनी धारणाओं को और दृढ़ पाते है। रामविलास जी को यह विश्वास था कि महायुद्ध की विभषिकाओ को पार करके जन साधारण का जीवन नये स्तर पर विकसित होगा। कविता का विकास वे जनता के इसी अभियान से जोडते हैं वे मानते हे जो इस अभियान के विरोधी हैं वे कुठा और घुटन के कारागार में स्वयं को बंदी बना लेते है और रूप के नाम पर अनगढ प्रतीक योजना के अलावा कुछ नहीं दे पाते। राम विलास जी पुनश्च के

अपने वक्तव्य मे कविता के सोद्देश्य होने और बौनो का बौद्धिक व्यायाम न होने देने के लिये अपनी मान्यताये स्पष्ट करते है। वे मानते है "मूर्तिविधान वही सार्थक है जो भावों से अनुप्राणित हो जिसमे सहज इन्द्रिय बोध का निखार हो। दूर की कौडी लाना काव्य रचना नहीं, बौनों का बौद्धिक व्यायाम है। शब्द सगीत और छन्द सौंदर्य (भले ही वह मुक्त छन्द का सौदर्य हो) भावोत्कर्ष मे सहायक होते है। सम्पूर्ण कविता के कलात्मक प्रभाव के लिये भावों एव विचारों की परस्पर सबंद्धता, मूर्तियो या प्रतीको का आतरिक गठन और क्रांति के सभी अवयवो में तारतम्य स्थापित करने वाला शिल्प नितांत आवश्यक है।"[१८] रामविलास जी ने उपर्युक्त दृष्टि से निराला को सदा अपना पथ प्रदर्शक पाया है। राम विलास जी के निराला अथवा छायावाद की परपरा के प्रति गहरे लगाव के कारणो की खोज करते हुये नामवर सिंह ने कहा है कि "इसका एक जबरदस्त कारण यह हो सकता है कि – वर्तमान स्थिति से ये कवि अपने आप को नहीं जोड पा रहे थे जबकि इस नयी परिस्थिति के सामना के लिये साहित्य के क्षेत्र में नयी प्रवृत्तियॉ जन्म ले चुकी थीं।"[१९]

दूसरे संस्करण के अपने वक्तव्यों में कुछ कवियों ने अपने को "प्रथम प्रयोगकर्ता मनवाने की दबी हुयी कोशिश करते है। इस कोशिश में प्रभाकर माचवे और गिरिजा कुमार माथुर विशेष रूप से उद्धत दिखते है। गिरिजा कुमार माथुर तो 'प्रयोगशील आधुनिकता' और 'नयी कविता' के सबंध मे प्रचलित अनेक भ्रम गाथाओं के निराकरण मे लग जाते हैं, तो प्रभाकर माचवे ये मानते हैं कि प्रयोगवाद और नई कविता के नाम पर बहुत बकवास छपती रहती है। गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगशील आधुनिक कविता की उत्पत्ति और विकास के संबंध में ढेर सारे प्रश्न उठाते हुये यह बताते है कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन से चार–पॉच वर्ष पूर्व ऐसी रचनाएँ हो रही

थी तथा सन् १९४० के आस–पास के कृतित्व मे वह आधुनिक स्वर सबल और स्पष्ट होकर आ गया था।"[२०] वे आगे लिखते है "कविता की जिस चेतना का प्रादुर्भाव सन् १९३९–४० मे हुआ था उसने पिछली समस्त मान्यताओं को बदल डाला और एक अभूतपूर्व बौद्धिक नवोन्मेष (इटैलेक्चुअल रेनासॉं) को जन्म दिया। पूरी की पूरी मर्यादा परिस्थितियॉ प्रतिस्थापित कर दी गयीं। इतनी बडी तात्विक क्राति हिन्दी कविता मे कभी नहीं आयी थी।"[२१] यही नहीं गिरिजा कुमार माथुर इस तात्विक क्राति के एतिहासिक अवसर पर अपनी गर्व भरी उपस्थिति को भी रेखाकित करते हैं। आगे वे लिखते है "मै सन् ४० तक कितने ही प्रयोग कर अपना मार्ग स्पष्ट कर चुका था" जुलाई ४१ में मैंने अंग्रेजी में एक लम्बा लेख लिखा था 'द थ्योरी आव–यू एक्स्पेरिमेण्टलिज्म इन हिन्दी पोट्री'।"[२१] गिरिजा कुमार माथुर की इस घोषणाओ से उनके प्रथम प्रयोगकर्त्ता स्वय घोषित किये जाने का कारण तब तक के 'तार सप्तक' के सफलता को तो जाता ही है अज्ञेय के प्रयोग के एकमात्र नेतृत्व को यह चुनौती भी है। प्रभाकर माचवे अपने पुनश्च मे लिखते हैं "यह बात मुझे न कहनी पडती तो अच्छा होता– अज्ञेय ने विशाल भारत में जनवरी ३८ मे दो इम्प्रेशनिस्ट कविताएं छापीं थीं तब मै शायद हिन्दी के अधिक निकट था।"[२२] प्रभाकर माचवे बहुत महीन स्वर मे इम्प्रेशनिस्ट कविताओं के द्वारा अपने को प्रयोगशील कविता के प्रथम नागरिक की तरह प्रस्तुत करते हैं। वे आगे लिखते हैं 'आज मै अपने को द्विभाषी मानता हूँ।"[२३] प्रभाकर माचवे को अपने का यह द्विभाषी मानना भी १९४३ से १९६३ तक की हिन्दी क्षेत्र और साहित्य मे एक अहिंदी क्षेत्र से आये कवि के अपने अतः परिवर्तनों के साथ ही इस क्षेत्र की राजनीति का भी परिचायक है। दूसरे सस्करण के अपने–अपने पुनश्च मे अपने को प्रयोगवाद या

किसी सगठित आदोलन का प्रवक्ता मानने का विरोध किया है। गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे और नेमिचंद्र जैन काफी दृढ़ता के साथ अपने ऊपर प्रयोगवाद के किसी भी लेबल को चस्पा किये जाने का विरोध किया है। नेमिचंद्र जैन ने 'तार सप्तक' के प्रकाशन सबंधी बहुत और सारे भ्रमो का निराकरण भी प्रस्तुत किया है।

नेमिचंद्र जैन के इस भ्रम निराकरण के पीछे 'तार सप्तक' की व्यापक सफलता तथा उस सफलता के लिये अज्ञेय की एकल दोवदारी के साथ ही तत्कालीन आलोचको द्वारा 'तार सप्तक' संबंधी तमाम भ्रातियॉ काम कर रही थीं। इन आलोचकों ने 'तार सप्तक' को एक आदोलन तथा उसके संपादक अज्ञेय को उस आंदोलन का सगठनकर्त्ता व नेता सिद्ध करने के साथ ही अन्य कवियों के व्यापक सहयोग को भी कम करके आकने की कोशिश की थी। आश्चर्य जनक रूप से अज्ञेय इस भ्रम को बनाये रखने में सहयोग दे रहे थे।

'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण के पुनश्च मे जहां कुछ कवियों ने अपने आप को हिदी कविता के इतिहास में न्यायोचित रूप से व्यवस्थित करने तथा परंपरा के प्रति नये आग्रह की चिंता से ग्रस्त थे वहीं कुछ कवि उपर्युक्त बीस वर्षो में 'तार सप्तक' की उपलब्धियों में अपने योगदान अभूतपूर्व सिद्ध करने में लगे थे। वहीं दूसरी ओर मुक्तिबोध अपने पहले वक्तव्य में मान रहे थे। "सौंदर्य ही मेरे काव्य का विषय हो सकता है।" पुरानी उलझन भरी अभिव्यक्ति और अमूर्त करूणा को छोडकर जागरूक हुआ।" यह मुक्तिबोध की प्रथम आत्मचेतना थी। मुक्तिबोध के बालमन की पहली मूख सौंदर्य और दूसरी विश्व मानव का सुख–दुख थी।

यही सौंदर्य की भूख और विश्व–मानव का सुख–दुख और इन दोनों का सघर्ष मुक्ति बोध के जीवन की पहली उलझन थी। इन उलझनों का स्पष्ट

वैज्ञानिक समाधान मुक्तिबोध को न मिल रहा था। मुक्तिबोध इन उलझनो से मुक्ति के लिये जीवन के एक ही दर्शन को लेकर कोई सर्वाश्लेषी दर्शन की मीनार नहीं खडी कर सके थे। अपने पहले वक्तव्य मे मुक्तिबोध स्पष्ट रूप से स्वीकार करते है कि "१६३८ से १६४२ तक के पाच साल व मानसिक सघर्ष और वर्ग सोनीय व्यक्तिवाद के वर्ष थे"।[२४] आतरिक विनष्ट शांति के और शारीरिक ध्वस के इस समय मे मुक्तिबोध का व्यक्तिवाद कवच की भाति काम करता था। वर्गसों की स्वतत्र क्रियमाण 'जीवन शक्ति' **(Elan Vital)** के प्रति मुक्ति बोध की आस्था बढ गयी थी। ऐसी स्थितियो में मुक्तिबोध के शब्दो में "क्रमश: मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।"[२५] तब तक मुक्तिबोध कलाकार की स्थानातर गामी प्रवृत्ति (माइग्रेशन इंस्टिक्ट) पर बहुत जोर देते थे। मुक्तिबोध अपने समय के वैविध्य मे उलझन से भरे रग–बिरगे जीवन को देखने के लिए अपने वैयक्तिक तेज से एक बार तो उडकर बाहर जाना आवश्यक मानते थे। मुक्तिबोध की मान्यता थी 'कला का केन्द्र व्यक्ति है पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है। फिर युग संधि काल मे कार्यकर्त्ता उत्पन्न होते है कलाकार नहीं। इस धारणा को वास्तविकता के द्वारा गलत साबित करना पडेगा। अपने पहले वक्तव्य मे मुक्तिबोध कहते हैं "जीवन के इस वैविध्य मे विकास स्रांत को देखने के लिये भिन्न–भिन्न काव्य रूपों को यहां तक कि नाट्य तत्व को कविता मे स्थान देने की आवश्यकता है।"[२६] मुक्ति बोध चाहते हैं कि इसी दिशा मे उनके 'प्रयोग' हो। अपने पहले वक्तव्य मे ही मुक्तिबोध, अज्ञेय के राहो के अन्वेषी पद से पूर्व घोषणा करते हैं कि "मेरी ये कविताए अपना पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन

स्थिति मे छिपा है।"[२७]

प्रथम सस्करण के वक्तव्यो के आलोक मे मुक्तिबोध के द्वितीय संस्करण के वक्तव्य को देखे तो यह बात बहुत स्पष्ट होती है कि मुक्तिबोध तत्कालीन जीवन में बढते हुए व्यवसायीकरण और व्यापारीकरण के सकट का जिक्र कर रहे थे। मुक्तिबोध अपने प्रदीर्घ अनुभव के आधार पर यह बता रहे थे कि "व्यक्ति स्वातन्त्र्य की वास्तविक स्थिति उन के लिए है जो उस स्वातन्त्र्य का प्रयोग करने के लिए सुस्पष्ट आर्थिक अधिकार रखते है।"[२८] यही नहीं मुक्तिबोध व्यक्ति स्वातंत्र्य के विवेकपूर्ण प्रयोग के पक्ष पाती है।

१६४३ तक जो मार्क्सवाद की ओर क्रमशः झुकाव हुआ था वह १६६३ तक एक जीवन दर्शन का रूप ले चुका था। इसके चलते वे व्यवसायीकरण व्यापारीकरण के दबाव को अनुचित पाते हैं। जीवन और परिवेश की विषमता की स्थिति आभ्यंतर लोक मे भी दु. स्थिति उत्पन्न करने के कारण मुक्तिबोध के लिए पीडा दायक थी। इन बीस वर्षो मे मुक्तिबोध की कविता का संसार लगातार आत्मग्रस्तता के बावजूद उनका आत्म संवेदन समाज के व्यापकतर छोर को छूने लगा। उनकी कविता में बेचैनी और तनाव पहले से भी ज्यादा बढ गये। 'तार सप्तक' के पहले संस्करण में भारत भूषण अग्रवाल के हाथ मे कविता एक मूल्यवान अश्त्र की तरह थी। वे मानते है "हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने के बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लडना होगा, जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पना विलासी बना छोडा है, और जिसने उसको अपनी कविता को ही एक मात्र सम्पत्ति मानने के भ्रम मे डाला है।"[२९] पहले सस्करण के वक्तव्य मे भारत भूषण अग्रवाल उन स्थितियो की व्याख्या भी करते हैं जिनके चलते एक कवि अपनी कविता को ही

अपनी एक मात्र सम्पत्ति मानने लगता है। यही नहीं १६४३ तक भारत भूषण अग्रवाल 'कला—कला के लिए' की प्रवचना के मूल कारण भी समझ''[३०] पाये थे, साथ ही उसके उचित उपयोग को भी[३१] तब तक कर्म से पलायन ही उनकी कविताओ का स्पदन रहा था।

पर दूसरे सस्करण तक न कविता अस्त्र रही, न मूल्यवान व अमूल्य। यहा वे स्वय अस्त्र बन गये है। यह परिवर्तन उनकी इस स्वीकरोक्ति का कुछ प्रतिफल ही है कि ''आज कम्युनिस्ट नहीं हूॅ। यही नहीं अब तो लगता है कि जब कहता था तब भी नहीं था।''[३२] वे अपने मार्क्सवादी जीवन के उन दिनो को भटकन की तरह पाते है। और सही रास्ते पर आ जाने को ही बहुत बडा सतोष मानते हैं।'' मुझे इसी बात पर कम संतोष और हर्ष नहीं है कि मैं इतना भटक कर भी रास्ते पर आ लगा हूॅ और चाहे इस प्रक्रिया मे ही अधेड हो गया हूॅ[३३] इत्यादि बाते उनके मन में उपजी एक दूसरी कुठा की ही सफाई की तरह लगती है। उनके सामने कवि कर्म अतिरिक्त कर्म होकर आता है एक मात्र कर्म नहीं। वे कहते हैं ''वैसे तो आज का साहित्यकार मात्र ही अपनी क्षमता का दुरपयोग करने को बाध्य है, पर कवि तो सबसे अधिक क्योकि सर्वाधिक प्राचीन और भव्य साहित्य विधा का व्यावसायिक मूल्य सबसे कम है।'' यहा हम उनकी बदली हुई मन. स्थिति को ठीक समझ सकते है जहॉ कविता उनके लिए एक 'अनुपादक उत्पाद' की तरह होकर रह गयी है। इस वाक्य को प्रथम सस्करण के 'कविता मूल्यवान अस्त्र' की तरह हो सकती है से मिलाकर देखने पर भी परिवर्तन को ठीक से समझा जा सकता है। यहाँ आकर कविता उनक लिए एकमात्र सम्पत्ति न होकर ''कविता का साथ 'घर फूंक कर ही'' देने की स्थिति पैदा करती है।[३४] वे इस घर फूंक को आज व्यावहारिक भी नहीं पाते।

भारत भूषण अग्रवाल जिन समस्याओ को अपने 'प्रनष्य' के वक्तव्य मे उठाते है वे नितात महत्वपूर्ण होते हुए भी उनकी बदली हुई मन स्थिति को उजागर करता है। यहॉ वे यह भूल जाते है कि ये सभी समस्याएं पूंजीवादी समाज की देन हैं। उनके युग का प्रत्येक कवि इस समस्या से दो चार हो रहा था। १९६३ तक भारत भूषण एक परिवर्तित तथा डोली हुई आस्था के कवि रह गये थे। उन्हे अपनी कमजोरी का भान हो गया था, इसका प्रमाण उनकी 'दूॅगा मैं' और 'मै और मेरा पिट्ठू ' जैसी कविताए है। वे कहते है.

"मुझमें सामर्थ्य कहॉ
कि अपने को भी नि.स्व करके भी
तुम्हे बॉध नहीं पाऊगा" – 'दूंगा मैं'
१९६३ तक उनकी आग मे ताप भी नहीं बना–
"लो यह आग
जिसकी चिनगी मे जलन तो क्या
ताप भी नहीं।"[३५] (– 'दूॅगा मैं' पृष्ठ ११८)

इस सारे तथ्यो से यह स्पष्ट है कि १९६३ तक भारत भूषण अग्रवाल के मन मे स्वतत्रता आदोलन की आग का रत्तीकर ताप बाकी नहीं रह गया था। यही स्थिति उस समय तक स्वतंत्रता से उम्मीद जमाने वाली अधिकतर नागरिक की थी। ऐसी स्थिति में यदि उनका मन अपने को 'बुझा' हुआ और 'अशक्त' पाता है तो गलत नहीं है।

दूसरे सस्करण की कविताओ में प्रभाकर माचवे का व्यग्य और सध गया था। उनके व्यग का लक्ष्य नि संदेह पूंजीवादी संस्कृति थी। 'डरु' और पूंजीवादी संस्कृति' जैसी कविताओं में उन्होने अपने व्यग्य को एक नया विस्तार दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि १९४३ से १९६३ के

बीच अपनी रचनात्मकता का सही दिशा मे विकास दो कवियों ने ही किया। इनमें अज्ञेय और मुक्तिबोध ने अपनी वैचारिक प्रक्रिया को और अधिक वर्तुल बनाया। जहॉ अज्ञेय परम्परा की तरफ उन्मुख हुए वहीं मुक्तिबोध ने पूॅजीवादी समाज मे व्यक्ति के निजी सघर्ष को परिलक्षित किया। भारत भूषण अग्रवाल और नेमिचद्र जैन जहां अपनी विचारधारा के परिवर्तित हो जाने की उद्घोषणा करते है वहीं इनकी कविताओ का विकास बहुत सरल रेखा में जाता जान पडता है। इसका एक बड़ा कारण इन दोनो कवियो का कविता से इतर अधिक सक्रिय होना भी हो सकता है। गिरिजा कुमार माथुर भी कविता पर 'साहित्येतर' दबाव को अशुभ लक्षण मानते हैं तथा इससे सचालित कविता को 'कविता' नहीं एक गैर इमानदार 'पद्य–वस्तु' मानते हैं। इन तीनो कवियो भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचद जैन, और गिरिजा कुमार माथुर मे आए परिवर्तन का कारण तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियां तो हैं ही साथ ही इन कवियों की मनोरचना भी इसके लिए जिम्मेदार है। आजादी के पूर्व 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ और इन कवियो के वक्तव्यो मे उस समय भी सारी सकल्पना मे स्वतत्रता के संघर्ष की चमक अपना असर बनाये रखती है। १९६३ तक यह सारी सकल्पना किसी भी मोर्चे पर पूरी होती नहीं दिखती। पं. नेहरु से मोह तथा उनके नेतृत्व मे आस्था रखने वाली इस पीढी को सिवाय निराशा और संघर्ष के शायद कुछ नहीं मिला। सत्ता प्राप्ति के बाद राजनेता और साहित्यनेता अपने पूर्व घोषित 'घोषणा पत्रों' (मैनी फास्टो) को या तो भूल गये या अधूरा लगा। इसलिए हम यह मान सकते हैं कि तार सप्तक के कवियों ने १९४३ के घोषणा पत्र १९६३ मे सशोधित किया। यह संशोधन बाद मे निरतर होता रहा। कवि तथा उसकी कविता का यह एक नया लेन देन माना जा सकता है।

सदंर्भ

१ अज्ञेय, 'तार सप्तक' दूसरे सस्करण की भूमिका 'छठा सस्करण १६६५, पृष्ठ ५।

२ उपरोक्त पृष्ठ ६।

३ नेमि चन्द्र जैन, तारसप्तक।

४ भारत भूषण अग्रवाल, तारसप्तक।

५ अज्ञेय, 'तार सप्तक' पुनश्च, पृष्ठ २४५–४६, छठा सस्करण।

६ उपरोक्त पृष्ठ २४४।

७ अज्ञेय, तारसप्तक।

८ अज्ञेय, तारसप्तक।

६ अज्ञेय, तारसप्तक।

१० अज्ञेय, 'तार सप्तक' पुनश्च, पृष्ठ २४४

११ गिरिजा कुमार माथुर, पुनश्च, पृष्ठ १६७ संस्करण ६।

१२ उपरोक्त

१३ 'तार सप्तक' पुनश्च, राम विलास शर्मा, पृष्ठ २१४–१५।

१४ 'तार सप्तक' पुनश्च, राम विलास शर्मा, पृष्ठ २१४–१५।

१५ 'तार सप्तक' पुनश्च, राम विलास शर्मा, पृष्ठ २१४–१५।

१६ 'तार सप्तक' वक्तव्य पृष्ठ १६०, छठा सस्करण।

१७ पुनश्च, पृष्ठ २१४–१५।

१८ पुनश्च, पृष्ठ २१४–१५।

१६ नामवर सिह। आ० हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ।

२० गिरिजा कुमार माथुर – 'तार सप्तक' पृष्ठ १६३ छठा सस्करण।

२१ गिरिजा कुमार माथुर – 'तार सप्तक' पृष्ठ १६५ छठा सस्करण।

२२ प्रभाकर माचवे – 'तार सप्तक' पृष्ठ १३६ छठा सस्करण।

२३ प्रभाकर माचवे – 'तार सप्तक' पृष्ठ १३६ छठा संस्करण।

२४ मुक्ति बोध – 'तार सप्तक' पृष्ठ २१ छठा सस्करण।

२५ मुक्ति बोध – 'तार सप्तक' पृष्ठ २२ छठा सस्करण।

२६ मुक्ति बोध – 'तार सप्तक' पृष्ठ २३ छठा सस्करण।

२७ मुक्ति बोध – 'तार सप्तक' पृष्ठ ४४ छठा सस्करण।

२८ मुक्ति बोध – 'तार सप्तक' पृष्ठ ४५ छठा सस्करण।

२६ भारत भूषण अग्रवाल, 'तार सप्तक' वक्तव्य, छठा सस्करण, पृष्ठ ८४।

३० उपरोक्त, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ८८।

३१ उपरोक्त।

३२ उपरोक्त, पृष्ठ ८५।

३३. उपरोक्त, पृष्ठ ११०।

३४ उपरोक्त, पृष्ठ १११।

३५ उपरोक्त, पृष्ठ ११८।

उपसंहार

द्विवेदी युग' की काव्य अनुभूति से असतुष्ट होकर छायावादी कवियों ने भाषा, लय और शिल्प के स्तर पर जिस स्वर्ण काव्य लोक की रचना की थी। साहित्य और राजनीति की एतिहासिक आवश्यकता के तनाव में वह काव्य लोक अप्रासगिक होता जा रहा था। पत, छायावाद का 'युगान्त' घोषित करके 'ग्राम्या' मे 'विश्व को ग्रामीण नयन से देख रहे थे।' छायावादी काव्य लोक से सक्रमणकाल की प्रतिनिधि रचना के रूप मे 'कुकुरमुत्ता' प्रकाशित होकर कविता के बदले हुये मिजाज का सकेत दे रही थी। फिर भी छायावादी काव्य की 'वायवीयता' से हिन्दी कविता का परिवेश भरा था। मध्य भारत के कुछ युवक कवियों ने इन्हीं सारी परिस्थितियों में एक संयुक्त सकलन की योजना बनायी जिसममे पहले केवल मध्य भारत के युवक कवियों को सम्भिलित किया जाना था। पर बदलते–बदलते इस योजना मे मध्य भारत के बाहर के भ कवि सम्मिलित हुये। अतत १९४३–४४ मे छपकर सात युवा कवियों का संग्रह 'तार सप्तक' नाम से हिन्दी जगत मे आया।

तार सप्तक' के प्रकाशन का इतिहास उपर्युक्त ही होता यदि वह सफल न हो गया होता उसकी सफलता ने उसके आयोजकों को इस बात के लिये बाध्य किया कि उसके प्रकाशन का श्रेय किसे दिया जाय। संपादक अज्ञेय ने सारा श्रेय खुद लेते हुये अन्य कवियो को अपेक्षित महत्व नहीं दिया। इसके बारे मे अज्ञेय अन्तर्विरोधी बाते कहते है। आकाशवाणी को दिये गये एक साक्षात्कार में अज्ञेय कहते हैं कि "तार सप्तक की योजना बुनियादी तौर पर मेरी नहीं थी लेकिन जो उसका स्वरूप बना वह

बिल्कुल मेरा था। कवियो के चयन आदि को लेकर भी अज्ञेय ने अन्तर्विरोधी बाते की है। प्रभाग चन्द्र शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन के नामो के जुडने ओर कटने के पीछे अज्ञेय पुन अन्तर्विरोधी वक्तव्य देते हैं, वे कहते है– ''प्रभाग चन्द्र शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन का नाम मैने निकाल दिया और इसके स्थापनापन्न मे रामविलास शर्मा और भारत भूषण अग्रवाल को सम्मिलित किया जबकि राममविलास शर्मा, अज्ञेय की पसद थे और भारत भूषण अग्रवाल का नाम नेमिचद्र जैन वगैरह ने सुझाया था। अज्ञेय की 'तार सप्तक' योजना सबधी दावो का खण्डन 'तार सप्तक' में सकलित कवियो ने स्वय किया। साथ ही 'तार सप्तक' के बाहर के कवि शमशेर बहादुर सिंह ने भी मुक्तिबोध के काव्य सग्रह 'चाद का मुह टेढा है' की भूमिका में बताया ''तार सप्तक की मूल योजना नेमिचद्र जैन व प्रभाकर माचवे की थी।'' नेमिचद्र जैन ने 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण और धर्मयुग के 'तार सप्तक' प्रसग लेख मे 'तार सप्तक' के प्रकाशन का इतिहास स्पष्ट करते हुये बताया कि 'तार सप्तक' की योजना उनकी प्रभाकर माचवे, प्रभाग चद्र शर्मा और मुक्तिबोध की थी। यही स्थिति 'तार सप्तक' के नामकरण को लेकर भी है नेमिचंद्र जैन का कहना है कि 'सप्तक' नामकरण के पीछे उनका सगीत प्रेम था और बाद में जो अन्य नाम सुझाये गये उसमे प्रभाकर माचवे ने सुझाया सप्तक पर अन्त तक नेमिचंद्र जैन के सुझाव को ही माना गया।

'तार सप्तक' का प्रकाशन वर्ष भी विवादित है। उसके पहले संस्करण में प्रकाशन वर्ष १६४३ दिया गया है जबकि तथ्य बताते हैं कि यह संग्रह १६४४ के आरम्भ मे छपकर आया। यही नहीं नेमिचंद्र जैन जैसे कवि अपने परिचय में 'तार सप्तक' का प्रकाशन १६४४ ही लिखते हैं। कृष्ण बलदेव वैद्य के प्रश्न का उत्तर देते

हुये बताते है "४३ के अत मे 'तार सप्तक' छपा और ४४ मे रिलीज हुआ।" डॉ. राम विलास शर्मा के नाम अज्ञेय के पत्रों से भी इस बात की पुष्टि होती है। १४ दिसबर ४३ के अज्ञेय के एक पक्ष से यह पता चलता है कि "इस तिथि तक अज्ञेय जी के पास रामविलास जी की न कविताए न परिचय और न ही वक्तव्य था।" 'तार सप्तक' के १६४४ मे प्रकाशित होने का एक प्रमाण यह भी है कि रामविलास जी के पास 'तार सप्तक' की प्रतिया २ फरवरी ४४ के बाद भेजी गयीं। इन तथ्यो से नेमि जी की ही बात प्रमाणित होती है कि 'तार सप्तक' का प्रकाशन ४३ मे नहीं ४४ में हुआ था।

'तार सप्तक' के पहले सस्करण की भूमिका में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' कवियो के लिये लिखा कि ये सातो कवि "किसी एक 'स्कूल' के नहीं है। किसी मजिल पर पहुचे हुये नहीं है, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी हैं।" 'तार सप्तक' के पहले सस्करण मे ही मुक्तिबोध और नेमिचद्र जैन ने इस 'राहो के अन्वेषण' की बात प्रकारान्तर से उठायी थी। मुक्तिबोध ने लिखा कि 'ये कविताएं अपना पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं।' यह 'पथ ढूँढने वाला बेचैन' मन ही अज्ञेय के यहा 'राहों का अन्वेषी' होकर आया था। नेमिचंद्र जैन ने भी अपने वक्तव्य मे 'राह की खोज' से बढकर आगे की पीढियो में 'पगडंडी तैयार' करने की बात कविता की ऐसी पगडडी जिसमे खूद पीटकर कविगण शायद राजमार्ग बना लें। मुक्तिबोध और नेमिचंद्र जैन के वक्तव्यों में आये पथ ढूंढने वाले तथा नयी पगडंडी जिसे खूद पीटकर बाद के कवि राजमार्ग बना लेगें का ही भाव सार है 'राहों के अन्वेषी'। यह मानने मे जिसे किचित असुविधा हो वे इन वक्तव्यों के मर्म को समझने की कोशिश करे दोनो ही कवियों में राह (पथ और पगडंडी) के अन्वेष (ढूंढने, नयी

बनाने) की बात अपने वक्तव्य मे निचोड के रूप मे रखी है। कमोवेश पूर्व नियोजित न होते हुये भी सभी कवि राहो के अन्वेषी हैं। जहा मुक्तिबोध, नेमिचद्र जैन अपने वक्तव्यो मे क्रमश· पथ ढूंढने और नयी पगडडी बनाने का प्रस्ताव रखते है वहीं अज्ञेय पूरे 'तार सप्तक' के कवियो को एक ही स्कूल का न मानते हुये भी राहो का अन्वेषी घोषित करते है। उनके राहो के अन्वेषी में जहा कवि 'परम तत्व के शोध' में लगे दिखते है वहीं कवियो द्वारा कविता मे किये जा रहे परिवर्तनो का भी सकेत मिलता है। राम विलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर ने अपनी कविताओ में नयी राहो को आविष्कृत किया है। इन सबने नये छदों को विकसित किया है तथा कविता को नयी राहे प्रदान की है।

'प्रयोगवाद' का विधिवत आरभ 'तार सप्तक' के प्रकाशन से होता है। 'तार सप्तक' की भूमिका मे उसके संपादक अज्ञेय ने प्रयोगशील तथा प्रयोगशीलता जैसे पदो तथा कविता को 'प्रयोग' का विषय मानने वाली बातों का हवाला दिया था। हालाकि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक में प्रयोग और उसके बाद दोनों की बेमानी सिद्ध किया। वस्तुत 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण में अपने को 'प्रयोग' का वादी न मानते हुये भी अज्ञेय द्वारा 'प्रयोग' प्रयोगशील और प्रयोगशीलता जैसे पदों के बार–बार इस्तेमाल करने के कारण आलोचको ने उन्हे 'प्रयोग' के वाद का संस्थापक घोषित करने मे काफी सुविधा महसूस की। अज्ञेय ने अपने वक्तव्य में कवि की सबसे बडी समस्या और अनेक समस्याओं आदि में साधारणीकरण और 'कम्यूनिकेशन' को ही कवि कम की मौलिक समस्या माना है। इसे ही वे कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बडी शक्ति मानते हैं। आगे वे लिखते हैं कि 'प्रयोग' सभी

कालो के कवियो ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल मे किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है किंतु कवि क्रमश अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रो में प्रयोग हुये है उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे अभी तक नहीं छुआ गया था या जिनको अभेद मान लिया गया है।"

प्रयोगवाद पर शुरू होने वाले विवाद के पीछे अज्ञेय द्वारा 'तार सप्तक' में दिया गया यह वक्तव्य ही था, कि "सग्रहीत कवि सभी ऐसे होगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते है। जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।" मुक्तिबोध ने भी अपने वक्तव्य में 'प्रयोग' शब्द का इस्तेमाल किया हैं वे लिखते हैं "जीवन के इस वैविध्यमय विकास स्रोत को देखने के लिए इन भिन्न–भिन्न काव्यरूपों को यहा तक कि नाट्यतत्व को कविता मे स्थान देने की आवश्यकता है। मै चाहता हू कि इसी दिशा में मेरे प्रयोग हो। "मुक्तिबोध ने जिस दिशा में 'प्रयोग' पर बल दिया है उसमें काव्यरूपों, विशेषकर नाट्यतत्व को भी कविता मे स्थान देने की ओर इगित है। अपने 'प्रयोगवाद' शीर्षक लेख मे मुक्तिबोध प्रयोगवाद से साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप मे देखे जाने पर जोर देते है। सन् ४६ मे शमशेर ने 'तार सप्तक' की जो पहली समीक्षा 'नया साहित्य' मे की थी उसमे 'प्रयोगो' का जिक्र है 'प्रयोगवाद' का नहीं। डॉ रामविलास शर्मा के अनुसार प्रयोगवाद शब्द की जरूरत तब हुई जब प्रगतिवाद के विरोध में एक नये वाद को स्थापित करना जरुरी हुआ। शमशेर बहादुर सिह ने 'तार सप्तक' के प्रयोगों को रेखाकित करते हुए उसकी इन विशेषताओं को बहुत सफल नहीं माना था। डॉ. देवराज प्रयोगवाद की उत्पत्ति को रेखांकित करते हुए बताते हैं कि, "अंग्रेजी में

प्रयोगवादी जैसी कविता प्रथम महायुद्ध के बाद के अनास्थामूलक वातावरण मे उद्भूत हुई। हिन्दी प्रयोगवाद भी केवल युग से प्रभावित नहीं है। वह बहुत हद तक इलियट एजरा पाउण्ड आदि की शैली के अनुकरण मे उत्थित हुआ है।" वे ऐसा इसलिए कह पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कवि देश के निर्माण, उसकी सृजनात्मक शक्तियो के पुनर्विकास के सशक्त स्वप्न भी देख सकते थे। नई स्फूर्तिदायक जीवन दृष्टियो की परिकल्पनाएं भी कर सकते थे। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, "प्रयोगवाद नाम चलने का कारण 'तार सप्तक' के सम्पादकीय तथा कुछ अन्य वक्तव्य हैं। इस सज्ञा के वीज कहीं है। यह प्रयोग शब्द अग्रेजी कविता में प्रचलित 'एक्सपेरिमेट' के ही वजन पर हिन्दी मे चला था। लेकिन हिन्दी में जो प्रयोगपाद चल पडा उसके लिए अग्रेजी मे 'एक्सपेरिमेटल्जिम' नामक कोई वाद नहीं है।" यहा नददुलारे बाजेपई के प्रयोगवाद सम्बन्धी निष्कर्षो को भी देखा जाना चाहिए जिरामे उन्होने यह परिणाम निकाला था कि प्रयोगवादी कविता उन कवियों की कविता होती है जिनमे आपस में मतभेद हो। प्रयोगवाद की उत्पत्ति सम्बन्धी कुछ अन्य दावे भी दृष्टव्य है। 'नकेन' के कवि केशरी कुमार प्रयोगवाद का आरम्भ नलिन विलोचन शर्मा की १६३७–३८ में लिखी कविताओ से मानते हैं। वहीं गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगवाद का मूलतत्व निराला की कविताओ में स्थित पाते हैं। बालकृष्ण राव पत और निराला को प्रयोगवाद का आरंभ कर्ता मानते है। उनका मानना है कि प्रयोगशील कविता छायावाद युग से ही आरंभ हो गयी थी। युगवाणी के पंत तो पूर्णतया प्रयोगशील थे ही। पल्लव और वीणा मे भी भाषाओं छंद विधान के अनेक (उस परिस्थिति में साहसपूर्ण) सुन्दर और सफल प्रयोग हिन्दी संसार के सामने आ

चुके थे। निराला जी ने तो अपने प्रयोगो से क्राति मचा दी थी। छद और लय के उनके अनेक प्रयोग आज की प्रयोगशील कविता से भी अधिक चौंकाने वाले थे, इससे भी अधिक आतकित और आकर्षित करने वाले सिद्ध हो चुके थे। अज्ञेय ने अपने एक इटरव्यु मे प्रयोग सम्बन्धी मूल्य को श्रीधर पाठक और शिवाधार पाण्डेय की कविताओ मे माना है अज्ञेय का विचार है कि, "मनु जी मनु जी यह तुमने क्या किया" कविता मे पहली बार श्रीधर पाठक ने आदमी और देवता का अन्तर स्थापित किया। मनुष्य को देवता से अलग रख कर देखने का यह प्रथम प्रयास था। आगे चलकर 'तार सप्तक' मे इसका विकास हुआ। नामवर सिंह का मत है कि 'तार सप्तक' से पहले हिन्दी मे कविता अपना रूप बदल रही थी। गिरिजा कुमार माथुर 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण के पुनश्च में प्रयोगशील आधुनिकता सम्बन्धी भ्रमों का निवारण करने का प्रयास करते है। वे मानते है कि प्रयोगशीलता के साथ ही हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का शुभारम्भ हुआ। यहीं वे सकेत करते है कि 'तार सप्तक' के प्रकाशन के काफी पहले १६४० तक कितने ही प्रयोग करके वे अपना मार्ग स्पष्ट कर चुके थे। गिरिजा कुमार माथुर के वक्तव्य से ऐसा जान पड़ता है कि प्रयोगवाद के आरंभकर्ताओं में से वे भी एक हैं। गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगशीलता की जगह आधुनिकता पर जोर अधिक देते हैं। प्रयोगवाद के स्थान पर उनके यहां आधुनिकता की प्रक्रिया का प्रयोग मिलता है। 'तार सप्तक' के एक प्रमुख कवि नेमिचन्द्र जैन प्रयोग शब्द को बदलती हुई चेतना और उसकी प्रमाणिकता के रूप में लेते है। वे लिखते है– "मैं अनुभव करता हूं कि इस तथाकथित प्रयोगवाद और प्रयोगवादी कविता की जहा उसके स्वरूप के सामाजिक और काव्यगत सामूहिक और वैयक्तिक

स्रोतो का अधिक कल्पनाशील अध्ययन आवश्यक है जो अलग से स्वतंत्र विवेचन का विषय है। हिन्दी मे प्रयोगवाद की सस्थापना का श्रेय न चाहते हुए भी अज्ञेय को जाता है। पहले सप्तक मे इसका बीजारोपण होता है। दूसरे सप्तक मे यह पल्लवित और स्थापित होता है।

'तार सप्तक' के कवियो की कविताओ को लिखते हुए दिनकर ने यह सकेत दिया है कि ये (कविता) उन सभी कविताओ से भिन्न है जिन्हें देखने सुनने के हम अब तक आदी रहे है। इनका कवि जानबूझ कर काव्य के साधारण नियमों को भूल गया है। इनकी पृष्ठ भूमि मे जो कुछ दिखता है वह निर्जन और विषण्ण है। शायद आने वाली युग की कविता इसमे अपनी ट्रेनिग पा रही है। 'तार सप्तक' एक परिवर्तन की सूचना लेकर आया था। उसी वर्ष यानी १९४६ ई में ही 'तार सप्तक' की पहली समीक्षा करते हुए शमशेर बहादुर सिह 'तार सप्तक' को अत्यन्त नकारात्मक स्वर लिए हुए काव्य सकलन पाते है और इससे बहुत उत्साहित नहीं दिखते। वे संकलन के अन्य कवियों के वक्तव्यो के आधार पर अज्ञेय की भूमिका की बातों से असहमति दिखाते है। शमशेर ने अलग–अलग कवियों पर अलग–अलग टिप्पणी देते हुए कहा कि मुक्तिबोध की मान्यताए नकारात्मक हो गयी हैं अज्ञेय वर्जनाओं के संसार से घिरे है। प्रेम की स्मृतियों एव प्रेम के मधुरतम क्षणों का चित्रण करने वाले गिरिजा कुमार माथुर में भी उदासी है। थकावट है, सूनापन है, खोई हुई परछाइयाँ है। प्रभाकर माचवे की झोली मे कुछ है, तो संशय के दो कण। नेमिचंद्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल अपने मानसिक संघर्षों से मुक्त होने के लिए जनता की शक्तियों के साथ आना चाहते है, और भावुकता में उस ओर बढ़ते भी है। रामविलास शर्मा और अज्ञेय

की कविताओ को प्रयोग की कसौटी पर शमशेर सफल मानते है, और रामविलास शर्मा की कविता को नया और अधिक स्वस्थ तथा परुष और मुक्त पाते हैं। कुल मिलाकर 'तार सप्तक' की उपलब्धि शमशेर के लिए कोई खास नहीं। शमशेर की इस धारणा के विपरीत दिनकर ने 'तार सप्तक' मे अन्य कई नयी बातें देखीं। संग्रह की कविताओ मे डूब कर सोचने से ऐसा प्रतीत होता है, यह वैयक्तिकता समाज के प्रति दायित्व ही नही, प्रत्युत उसका आदर करने वाली है। इस वैयक्तिकता को भी दिनकर समाज सापेक्ष मानते है। दिनकर 'तार सप्तक' को दोष रहित नहीं पाते, पर उपर्युक्त बाते उसके सकारात्मक पक्ष को पाठको के समक्ष रखा। 'तार सप्तक' की आलोचना करते हुए डॉ नामवर सिह ने लिखा है कि "एक लम्बी चिन्तन प्रक्रिया में प्रगट होने के बावजूद 'तार सप्तक' के अपने आकर्षण भी थे। नामवर सिह के अनुसार पहला आकर्षण प्रयास की सामूहिकता, दूसरा आकर्षण कवियों द्वारा अपनी आस्था की घोषणा मे साहसिकता, तीसरा आकर्षण अपने आपको राहों का अन्वेषी स्वीकार करने की विनयशीलता थी। उनके अनुसार 'तार सप्तक' की सबसे बडी विशेषता सर्जनात्मक खुलेपन मे है। नद दुलारे बाजपेयी जी ने इन कवियों को उलझी हुई, सवेदना का कवि कहकर इन्हें नकार दिया था, क्या कवियो की संवेदना उलझी हुई भी होती है, डॉ नगेन्द्र के हवाले से कहा जा सकता है कि उपचेतन की संवेदनाएं प्रायः सभी उलझी हुई होती है। निष्कर्षतः हम इन बिन्दु पर पहुँचते है कि इन कविताओ में तद्‌युगीन परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवन संदर्भ मुखरित हो रहे थे। 'तार सप्तक' की कविताओं मे हर कवि की अपनी काव्यगत और शिल्पगत अलग–अलग विशेषताएं है। 'तार सप्तक' मे ये विशेषताएं, बीज से निकले

अखुए के रूप मे नया भाव बोध अभिव्यक्त होने के लिए व्याकुल हो रहा है। 'तार सप्तक' के इन बौद्धिक कवियो की प्रारम्भिक काव्य चेतना को समझने के लिए संग्रह की कविताओ के आधार पर इनका अलग–अलग विवेचन और विश्लेषण किया गया है। मुक्तिबोध की कविता में जीवन और जगत के द्वन्द्व को सुलझाने की कवि प्रदत्त बेचैनी मिलती है। उनकी कविताओं में वैयक्तिता है किन्तु वे इस बात के पक्षधर है कि कवि को अपने अन्तर मन तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। मुक्तिबोध की सृजनशीलता जीवन और परिवेष की विषमता के तनाव से उत्पन्न होती है। 'तार सप्तक' के दूसरे कवि नेमिचन्द्र जैन है। नेमिचन्द्र जैन घोषित रूप से मार्क्सवादी है, और साहित्य मे प्रगतिशील मूल्यों के पक्षधर, पर इनके वक्तव्य और इनकी कविताओं मे गहरा अर्न्तविरोध है। सघर्ष की चेतना के बदले परिवेश मे मुक्त होने मे असफल रहने के कारण विच्छोभ पीड़ा घुटन और पलायन स्वर कवि के मन में कहीं न कहीं आशा और उल्लास भी है। 'तार सप्तक' मे भारत भूषण अग्रवाल की सोलह कविताएं सकलित है। भारत भूषण मानते हैं कि कर्म से पलायन ही उनकी कविताओं का स्वप्न रहा है। भारत भूषण अग्रवाल की कविता में जहां रुढियों के प्रति आक्रोश है, वही आस्था और विश्वास उसके स्वर मे बुना हुआ है। संहार के साथ वह सृजन का पृष्ठ पोषण करता है। भारत भूषण अग्रवाल की विचारधारा मानवतावादी है इनकी कविता में बिम्बो और प्रतीकों का बहुत कम प्रयोग हुआ है। माचवें की कविताओं में सौंदर्य चेतना, दार्शनिक का चिन्तन और व्यंगकार की तीक्ष्णता की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। माचवे कहते है कवितागत रोमांस और यर्थाथ एक ही कोण की दो भुजाएं है। इनकी 'तार सप्तक' की कविताओ में विविधता बहुआयामी है। गिरिजा कुमार माथुर

छायावादी रुमानी भाव बोध के कवि अधिक है। उनकी कविताओ में प्रेम और सौंदर्य के विशद् चित्र मिलते है। 'तार सप्तक' तक आते—आते रुमानी कल्पना तो वहीं रह गयी पर नयी विषय वस्तु अनुभूतियों की जगह बौद्धिकता झलक मारने लगी। गिरिजा कुमार माथुर अपनी कविताओ में फोटोग्राफर की तरह चित्र खींचते है, और चित्रकारो की तरह उसमे रंगों का संयोजन करते है। राम विलास शर्मा जी के भाव जगत में गांव बसा हुआ है। ग्रामीण सौन्दर्य उनके कवि हृदय को भीतर तक आहलादित करता है पर रामविलास शर्मा विचारधारा को कविताओं में पिरोते भी है जिससे कविताओ का स्वाभाविक सौन्दर्य भी नष्ट होता है। पर जहा रामविलास जी ने ग्रामीण सौन्दर्य को सहजता से चित्रित किया है, वहा कविता अच्छी बन पडी है। 'तार सप्तक' मे अज्ञेय की कुल सत्रह कविताए है, इनके काव्य पक्ष मे आधुनिक युग के मानव की यौन वर्जनाओं का चित्रण मिलता है। अज्ञेय की 'तार सप्तक' की कविताओ मे कुल मिलाकर यौन कुण्ठाओं के ही चित्र अधिक मिलते है। इन कविताओ मे अज्ञेय का भाषण शिल्प का विवेक तत्सम् प्रधान अभिव्यंजन्नोमुख हो जाता है। शायद यही वह बिन्दु है जो उन्हें छायावादी कविता की भाषा से विलग नहीं रहने देता।

'तार सप्तक' के कवियों में इतनी विविधता है कि सब की कविताओं और वक्तव्यों मे व्यक्त स्थापनाओं में तीखी टकराहट की गूंज सुनायी देती है 'तार सप्तक' के कवियो का संबध मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश से है। स्वभावतः मध्यवर्ग के विशेषताओ से वे युक्त है। 'तार सप्तक' के इन कवियों में मध्यवर्गीय व्यक्तिवादी सस्कार और अभिलाषा का यह द्वन्द्व बड़ा ही प्रखर है। मुक्तिबोध की 'तार सप्तक'

कविताओ का प्रधान तत्व मध्यवर्गीय व्यक्ति का यही अन्र्तद्वन्द्व है। नेमिचन्द्र जैन की कविताओ का समाज मध्यवर्गीय युग का ही समाज है जिसमे मध्यवर्गीय संस्कारों और उसके तोड फेकने के विवेक का द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व के बीच भी कवि सौन्दर्यानुभूति के लिए वक्त निकाल लेता है। भारत भूषण अग्रवाल कविता में सामाजिक सरोकार को खूब अच्छी तरह समझते है। गिरिजा कुमार माथुर की काव्य दृष्टि भावुकता और रोमानियत से युक्त है। इनकी सारी उदासी और रुमानियत के मूल में मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रेम प्रसग है। 'तार सप्तक' के कवियो मे डॉ. रामविलास शर्मा सबसे सतुलित दृष्टि वाले कवि है। उनमे न तो किसी तरह का द्वन्द्व भाव है न ही पराजय बोध, इनकी कविता में मजदूरों की समस्याए है, जिसे वे प्रतिबद्ध सामाजिक दृष्टि से देखते है। 'तार सप्तक' की कविताओं मे अज्ञेय यौन कुण्ठा से घिरे है। प्रेम सम्बन्धी उनकी कविताओ मे कही भी अपर पक्ष की सहभागिता अथवा विश्वास नहीं मिलता, इन कविताओ मे प्रेम के प्रति आकर्षण की दुर्विनार अभिव्यक्ति हुई है।

'तार सप्तक' के प्रथम और द्वितीय सस्करणो के वक्तव्यों में गहरा अन्तर्विरोध परिलक्षित किया जा सकता है। पहले संस्करण (१६४३) के बीस वर्षो बाद (१६६३) मे 'तार सप्तक' का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ, सामान्यतः बीस वर्ष की एक पीढी मानी जाती है। १६४३ से १६६३, के इन २० वर्षों में कई कवि अपने पुराने वक्तव्यो के उलट चले गये तो कई उसी दिशा में प्रगति करते रहे, यहां ध्यातव्य है कि 'तार सप्तक' आजादी के पूर्व प्रकाशित हुआ था और दूसरे संस्करण के समय आजादी मिले पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे। इन वर्षों मे स्वतन्त्रता के पूर्व की स्थितियां बिल्कुल बदल चुकी थी। नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल ने अपने मार्क्सवाद

को
होने का खण्डन किया, जहा पहले सस्करण मे नेमिचन्द्र जैन अपने क्रियात्मक रुप से मार्क्सवादी मानते है और कम्युनिस्ट कहते है, वहीं दूसरे सस्करण तक आते—आते उनकी मार्क्सवाद संचालित राजनीति छूट ही नहीं गयी। उस क्षेत्र के सर्वव्यापी हीन सिद्धान्त और आर्दश हीनता के कारण अधी हो गयी। नेमिचन्द्र जैन की तरह भारत भूषण अग्रवाल भी जहा पहले सस्करण मे न केवल कम्युनिस्ट थे बल्कि मार्क्सवाद को समय के समाज के लिए रामबाण मानते थे। परन्तु इन्हीं बीस वर्षो में 'तार सप्तक' के दूसरे सस्करण मे कहते हैं कि आज मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ, यही नहीं अब तो लगता है जब कहता था तब भी नहीं था। गिरिजा कुमार माथुर जहां पहले संस्करण के वक्तव्य मे कविता के आन्तरिक पक्षो पर बात करते रहे थे वहीं दूसरे संस्करण में उन्होने कविता की सामाजिकता और युगीन चेतना तथा लेखकों पर पड़ने वाले साहित्येतर दबावो के प्रतिफल की पडताल करते है। वे मानते हैं कि "यदि लेखक किन्हीं साहित्येतर दबाव में आकर स्वानुभव साक्ष्य विहीन सत्य स्वीकार करता है तो वह कविता नहीं एक गैर ईमानदार 'पद्य वस्तु' की ही रचना करेगा। गिरिजा कुमार माथुर अचानक ही साहित्येतर दबावो को काव्य के लिए सबसे बडा अमिश्र निष्कर्ष मानते है। यह साहित्येतर दबाव प्रगतिशील लेखक संघ और मार्क्सवाद का ही दबाव है। गिरिजा कुमार माथुर सन् १९४० को छायावादी युग चेतना से सम्पूर्ण विच्छेद का बिन्दु मानते है। रामविलास शर्मा अपनी कविताओं का छायावाद से गिरिजा कुमार माथुर की तरह विच्छेद न पाते हुए उसकी परम्परा में जाते है पुनश्च में वे लिखते है "तार सप्तक' में संकलित इन कविताओं का घनिष्ठ सम्बन्ध छायावादी कविता और उससे भी अधिक छायावादी कवियो से है। रामविलास जी के निराला अथवा

छायावाद की परम्परा के प्रति गहरे लगाव के कारणो की खोज करते हुए नामवर सिह ने कहा है कि "इसका एक जबरजस्त कारण यह हो सकता है कि वर्तमान स्थिति से ये कवि अपने आप से नहीं जोड पा रहे थे। जबकि इस नयी परिस्थिति के सामना के लिए साहित्य के क्षेत्र में नयी प्रवृत्तिया जन्म ले चुकी थी।"

१९४३ से १९६३ के बीच अपनी रचनात्मकता का सही विकास दो कवियो ने ही किया इनमे अज्ञेय और मुक्तिबोध ने अपनी वैचारिक प्रक्रिया को और अधिक वर्तुल बनाया। जहा अज्ञेय परम्‍परा की तरफ उन्मुख हुए वहीं मुक्तिबोध ने पूँजीवादी समाज मे व्यक्ति के निजि सघर्ष को परिलक्षित किया। भारत भूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन जहा अपनी विचारधारा के परिवर्तित हो जाने की उद्घोषणा करते है। वहीं इनकी कविताओ का विकास बहुत सरल रेखा मे जाता जान पडता है। गिरिजा कुमार माथुर कविता पर साहित्येतर दबाव को अशुभ लक्षण मानते है तथा इससे सम्‍पादित कविता को कविता नहीं एक गैर ईमानदार पद्य वस्तु मानते है। कवियों में आये ये परिवर्तन कवि तथा उसकी कविता के बीच नये लेन–देन की तरह दिखते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची - पुस्तकें और पत्रिकाएँ

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य –– सच्चिदानद वात्स्यायन राजपाल एण्ड सस, दिल्ली संस्करण, १६७६।

२. आधुनिक साहित्य –– नद दुलारे वाजपेयी, भारती भंडार – संवत् १००७ विक्रमी।

३ आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ –– नामवर सिह, लोक भारती १६६३।

४. आधुनिक समीक्षा – कुछ समस्याये –– डॉ देवराज, राजपाल एण्ड संस, १६५४।

५. आधुनिक हिन्दी कविता मे बिम्ब विधान –– केदारनाथ सिंह भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण, १६७१।

६. काव्य की भूमिका, दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, १६५८।

७. अज्ञेय और तार सप्तक, स सत्य प्रकाश मिश्र, इलाहाबाद सग्रहालय, १६६५।

८. अज्ञेय अपने बारे मे, आकाशवाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

६. कविता के नये प्रतिमान –– नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली तृतीय संस्करण।

१०. कवि दृष्टि –– अज्ञेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद १६८३

११. तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १६६१।

१२. तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान –– कृष्ण लाल, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १६७८।

१३. तार सप्तक, सपादक अज्ञेय, प्रथम, द्वितीय और छठा सस्करण क्रमशः १६४३, १६६६ और १६६५, प्रतीक व भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी।

१४. तीसरा सप्तक, सपादक –– अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

१५. दोआब, शमशेर बहादुर सिह, सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद सस्करण १६६३–६४

१६. नयी कविता और अस्तित्ववाद, रामविलास शर्मा, संस्करण १६६३, राजकमल प्रकाशन

१७. नयी कविता, खण्ड एक, सपादक –– जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, २०००

१८ नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ, जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १६६६

१६. नयी कविता, उद्भव और विकास, डॉ. रामवचन राय, बि० हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १६७४।

२०. नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण २०१४।

२१. प्रयोगवादी काव्य, डॉ. पवन कुमार मिश्र, मध्य प्रदेश हिदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, १६७७।

२२. बदलते परिप्रेक्ष्य, नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १६६८।

२३. मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड २, ५, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १६६८।

२४. मानव मूल्य और साहित्य –– धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १६६०।

२५ रूपतरंग –– रामविलास शर्मा –– वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण, १६६५।

२६. राग –विराग –– सपादक राम विलास शर्मा, लोक भारती, संस्करण १६६६।

२७. छठवॉं दशक, विजय देव नारायण साही, हिदुस्तानी एकेडमी, संस्करण, १६८७।

२८ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, सस्करण, २०४१।
२६. हिन्दी नवलेखन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १६६०।
३० युगवाणी, पत, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
३१ हिन्दी निबन्ध, स विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १६७३।
३२ हिन्दी साहित्य कोश, भाग – एक, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, सवत् २०२०।
३३. अवन्तिका, जनवरी, १६५४ स. लक्ष्मी नारायण सुधाशु, पटना।
३४. नया साहित्य, अक – १, १६४६।
३५ नयी कविता, अक – १, १६५४।
३६. नयी कविता, अक – २, १६५५।
३७. भारत भूषण अग्रवाल, कुछ यादे कुछ चर्चाये बिंदु अग्रवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, १६८६।
३८. 'प्रतिनिधि कविताए --- शमशेर बहादुर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सस्करण, १६६२।
३६. शमशेर, सर्वेश्वर और मलयज, राधाकृष्ण प्रकाशन, सस्करण १६७१।
४०. सम्यक, संपादक ज्योतिष जोशी।
४१. कवियों के पत्र – डॉ० रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन।
४२. तारसप्तक से गद्यकविता – रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन।
४३. प्रेम चंद के श्रेष्ठ निबंध, संपादक डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद, १६६८।